इस्लाम की रूह

मानवीय संबंधों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत

खोज **समाज** **प्रयोग**

बुनियादी निसाब

[Training Manual 2024]

An Initiative by

भारतीय मुस्लिम महिला आन्दोलन के बारे में [BMMA]

जिसकी लढाई उसकी अगवाई

BMMA एक राष्ट्रीय, धर्मनिरपेक्ष, अधिकार-आधारित और स्वाधीन लोक संस्था है जिस की अगवाई मुस्लिम औरतों ने की है. यह आन्दोलन भारतीय मुस्लिम औरतों के नागरिक अधिकारों के लिए काम करता है जिस की शुरुआत २००७ में हुई थी.

सपना

एक ऐसा समाज तैयार करें जिस में मुस्लिम समाज और मुस्लिम औरतें अपनी ग़रीबी और पिछड़ापन दूर कर सके और ऐसी ज़िन्दगी जिए जिस में समानता, न्याय और मानव अधिकार की हिफाज़त हो.

उसूल

लोकतंत्र के उसूल, धर्म निरपेक्षता, समानता, अहिंसा, मानवाधिकार और न्याय जो भारतीय संविधान में जड़े है. यह उसूल हमारी न्याय की लड़ाई में हमारा मार्ग दर्शन करते है.

उद्देश्य

मुस्लिम समाज और मुस्लिम औरतों के पिछड़ेपन को समझना और उसे दूर करना

मुस्लिम औरतों का सशक्तिकरण करना और उन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नागरिक, कानूनी और धार्मिक अधिकारों को हासिल करना

संविधान के उसूल जैसे समानता, आज़ादी, धर्म निरपेक्षता, सामाजिक इन्साफ और लोकतंत्र को ज़िन्दगी में उतारना

इस्लाम के सकारात्मक और उदारवादी व्याख्या को आगे बढ़ाना जो न्याय, समानता, बराबरी और मानवाधिकार की सुरक्षा के उसूलों से मेल खातें हो

मुस्लिम पारिवारिक कानून में सुधार लाने की प्रक्रिया को आगे ले जाना

फासीवाद, शोषण कारी पूंजीवाद, कौम्वाद और साम्राज्यवाद के हर रूप का विरोध करना और शान्ति, न्याय और मानवाधिकार का समर्थन करना

अन्य आंदोलनों के साथ मिलकर काम करना जो सामाजिक समानता और मानवाधिकार के लिए काम कर रहे है

मुस्लिम समाज के अन्दर की जाती व्यवस्था को समझना और दलित मुस्लिम समाज के मुद्दों को उठाना

समाज के अन्दर एक वय्कल्पिक उदारवादी आवाज़ को तैयार करना

BMMA भारतीय संविधान से उपजने वाले हर अधिकार और ज़िम्मेदारी पर काम करता है. पिछले १७ सालों में १५ राज्यों में हमारी सदस्यता १ लाख के क़रीब है. हमारी सदस्यता सभी के लिए खुली है, पुरुषों के लिए भी, जो हमारे सपने और उद्देश्य को मानते है और जो धर्मनिरपेक्ष है.

संपादकिय नोट

धर्मों के मूल में उनका मकसद सामाजिक सुधार है। वे ऐसे समय में उभरे हैं जब समाज को अपना संतुलन हासिल करने और कुछ बुनियादी मानवीय उसूलों को बहाल करने की ज़रुरत थी। लेकिन यह भी सच है कि सारा धार्मिक ज्ञान, चाहे वह किसी भी धर्म का हो, पुरुषों के हाथ में ही रहा है। उन्होंने अपने पितृसत्तात्मक फायदों को ध्यान में रखते हुए उस ज्ञान को पढ़ने, व्याख्या करने और उसे फैलाने के अधिकारको अपने पास रखा है। इस का नतीजा ये हुआ कि धार्मिक पाठ और संस्थाएँ अमानवीय हो रही हैं और बदले में हिंसा, बहिष्कार और नफरत को बढ़ावा देने में एक-दूसरे के आगे जाने में लगी हैं। सभी धर्मों में महिलाएं सबसे पहले हताहत हुई हैं और उन्हें अमानवीय धार्मिक संस्थानों का सबसे गंभीर खामियाज़ा भुगतना पड़ा है।

इस्लाम में हम विभिन्न देशों में इस गिरावट को देखते हैं, खासकर मुस्लिम बहुसंख्यक देशों में, जो आज मानवाधिकार की सूचि में सब से आखिर में है और ख़ास कर के औरतों के मुद्दों पर। धार्मिक किताबों की पितृसत्तात्मक समझ के बावजूद, मुस्लिम महिलाओं ने सभी क्षेत्रों में काफी प्रगति की है और सामाजिक-आर्थिक-शैक्षिक सफलता हासिल की है। और अभी भी बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है ताके बेड़ियों में जकडे समाज का एक बड़ा हिस्सा आज़ाद हो सके.

हमारा मानना है कि एक धार्मिक संस्था के रूप में इस्लाम महिलाओं की आजादी में एक बड़ा किरदार निभा सकता है। लेकिन ऐसा होने के लिए, इस्लाम को उन लोगों के हाथों से वापस लेना होगा जिन्होंने सदियों से अपनी मक्तेदारी जमाये रखने के लिए इसका दुरुपयोग किया है।
समानता, न्याय, ज्ञान, करुणा, सौंदर्य और अच्छाई, प्रेम और शांति के कुरान के मूल्यों में निहित इस्लाम के मूल्यों को बढ़ावा देने की जरूरत है। इस्लाम के इन उसूलों को, जो पवित्र किताब में लिखे है उसे फिर से उजागर किया जाना चाहिए और उस संस्करण का मुकाबला करने के लिए इस्तेमाल करना चाहिए जो पितृसत्तात्मक, मक्तेदारी से भरा है और हिंसक है।

इस किताब का मकसद है कि इस्लाम के उसूलों को सामने लाना और न्याय और समानता के मूल्यों के आधार पर मुस्लिम महिलाओं को धार्मिक ज्ञान में सशक्त बनाना है।

हम मुस्लिम महिला विद्वानों का, जिनके काम का सहारा लेकर यह किताब बनी है, शुक्रिया अदा करते है. नारीवादी नज़रिए से धर्म को समझना बहुत ज़रूरी हो गया है और इन महिला विद्वानों ने बड़ी हिम्मत दिखाकर इस्लाम की बुनियादी उसूलों को उजागर किया है.
फण्ड फॉर ग्लोबल ह्यूमन राइट्स ने हमें इस प्रकाशन के लिए आर्थिक मदद की है. इस मदद की वजह से हम यह प्रकाशन को ज्यादा लोगों तक पहुंचा पायेंगे. हम उनका शुक्रिया अदा करते हैं.

डॉ. नूरजहाँ सफ़िया नियाज़ और ज़किया सोमन
सह-संस्थापक, भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन

लेख-सूची

04 - तौहीद:
मानव संबंधों का मौलिक सिद्धांत

08 - कलीफा:
पृथ्वी पर सभी मनुष्यों की जिम्मेदारी

13 - वली/विलाया:
बराबरी की सोच

18 - अहसन:
सुंदरता और अच्छाई को पुनः प्राप्त करना

25 - दस कुरानी आयातें जो सभी को पता
होनी चाहिए [इ-स-अ-अ-र]

32 - क़व्वामूना / किवामह - 1
पिदर्शाही नज़रिए से इसे समझना

38 - क़व्वामूना / किवामह – 2
नारीवादी नज़रिए से इसे समझना

44 – रोज़ा:
खाने-पीने से दूर रहने से कई ज़्यादा

51 - इस्लाम में रूह के मायने:

56 - मुस्लिम की महिला विद्वान और संत

64 - भारतीय मुस्लिम महिला संत-एक गुमशूदा शय

71 - मुस्लिम महिला मध्यस्थ

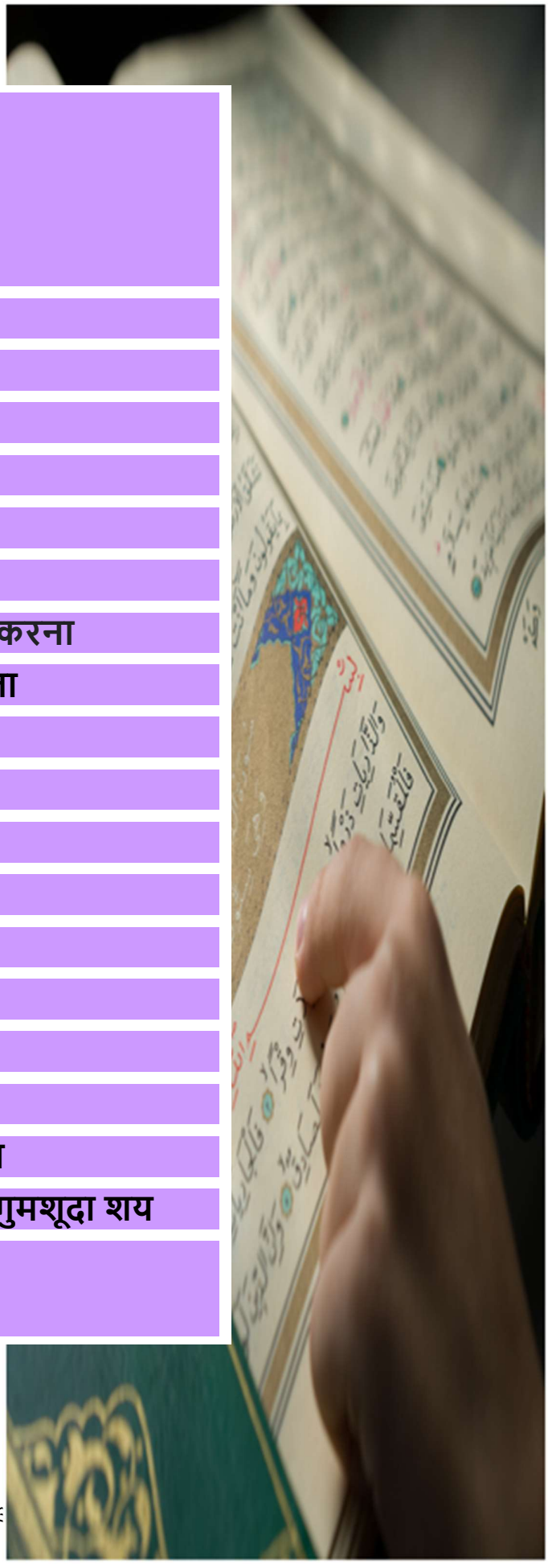

तौहीद :
मानव संबंधों का मौलिक सिद्धांत

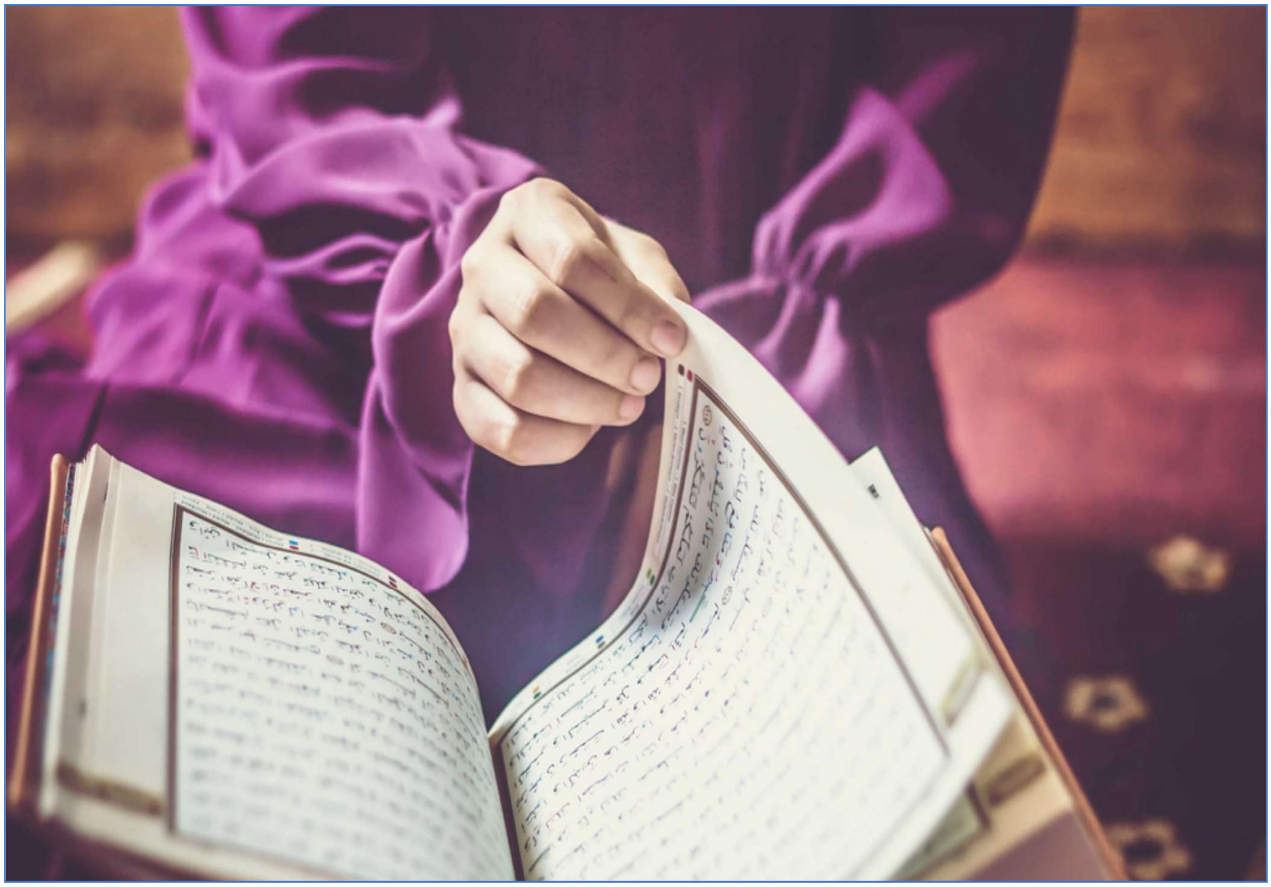

तौहीद का मतलब क्या है?

तौहीद का मतलब है एक ईश्वरवाद या अल्लाह की एकता। अल्लाह एक है. यह इस्लाम का बुनियादी उसूल है। तौहीद का यह भी मतलब है कि यह सभी मतज़ाद [विरोधाभासी] उसूलों में तालमेल रखता है। अल्लाह ज़िन्दगी भी देता है और मौत भी देता है, अल्लाह नाराज़ होने के साथ-साथ दयालु भी है, यह रात देता है तो दिन भी देता है। इसमें सभी फ़र्क़ को ख़त्म करने की ताक़त है।

कुल हुवा अल्लाह अहद, **अल्लाह अनोखा है, [उसके जैसा कुछ नहीं है [42:11]**

व लम यकुं लहु कुफुवन अहद [उनकी तरह एक चीज नहीं है [112: 4]

तौहीद का मतलब अल्लाह एकजुट भी करता है। यह छोटे से छोटे कण [atom] जो एक दूसरे से इतने अलग है, उन्हें भी साथ लाने का काम करता है। ताके वो अलग रहते हुए भी एक साथ काम करें। यह एकता के उसूलों पर काम करता है। यह क़ब्ज़ा और कंट्रोल करना नहीं चाहता। यह एक दूसरे को संतुलित/मतवाज़न [balance] करते हुए, एक-दूसरे की मदद करते हुए, सभी को पूरा बनाता है।

हम एकता के इस उसूल को अपने रोज़ की ज़िंदगी में कैसे लागू कर सकते हैं?

हम इस्लाम के साथ बड़ी ज़्यादती **करते हैं जब हम** तौहीद को सिर्फ़ अल्लाह की साथ के रिश्ते तक महदूद/सीमित रखते है**। इस्लाम में तौहीद** की **एक** अहम जगह **है। तौहीद** के ज़रिए हम ज़रूर इंसान और अल्लाह के रिश्ते को समझते है लेकिन तौहीद को सिर्फ़ इसी रिश्ते तक महदूद रखना सही नहीं है। हमें यह सोचना चाहिए की **तौहीद को** हम **अपने** रोज़ की ज़िंदगी में कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं । **तौहीद** के उसूलों को हम अपने रिश्तों में कैसे उतार सकते है।

तो हम सच में यह कैसे करते सकते हैं?

अगर तौहीद का मतलब है तालमेल रखना, **एकता लाना, तो क्या** एकता लाना, तालमेल बनाए रखना यह इंसानी ज़िम्मेदारी नहीं होनी चाहिए? **अगर अल्लाह** जोड़ता है, **तो क्या इंसानों को इस**की मुख़ालिफ़त/उल्टा करना **चाहिए? अगर अल्लाह एकजुट** करता है, **तो क्या इंसानों को** बिखेरने का काम करना चाहिए? बिलकुल नहीं। इंसान **को** वो **करना है**

जो अल्लाह इंसानो **के लिए करता है।** और सिर्फ़ इंसानो के बीच नहीं तो पूरी कायनात के बीच एकता बनाए रखना है।

हमें सभी इंसानी और ग़ैर-इंसानी चीज़ों को अल्लाह का रूप समझना चाहिए। सभी चीज़ें अल्लाह की रूहानियत से भरी है। हर हाल में, हर जगह, हमारा काम है तालमेल और एकता लाना। अगर कोई तौहीद को मानता है, तो बराबरी जरूरी है। अगर हम तौहीद के उसूलों को मानते हैं तो हम किसी को भी अपने से कम नहीं समझेंगे। हम औरत-मर्द के बीच में भी यह उसूल का इस्तेमाल करेंगे। आज औरतों की समझ और शऊर में इज़ाफ़ा हुआ है और उन्हें अपने से कम समझना तौहीद के
उसूलों के ख़िलाफ़ जाता है। तो पहला काम है औरतों और मर्दों को एक समान समझना। दोनो का दर्जा एक है और दोनो का दर्जा अल्लाह के सामने एक है।

क़ुरान की मदद से हम यह कैसे कर सकते है?

इंसान **को कुरान के** नज़रिए **से समझने के लिए, हमें यह समझने की** ज़रूरत है कि इंसान **के रूप में जन्म लेने का हमारा** मक़सद **क्या है। अल्लाह ने हमारे लिए क्या** सोचा है ? क़ुरान की आयत [2:30] में लिखा है - ***इन्नी ज़ाइलूँ फ़िल अल अर्द खलीफा*** - **मैं** इस दुनिया में **एक खलीफा बनाऊंगा।**

इस दुनिया में इंसान बनाने का मक़सद है, उसे ख़लीफ़ा बनाना। और यह **खलीफा** अल्लाह का वो एजेंट है जिस का काम है अल्लाह की मर्ज़ी को लागू करना और अल्लाह की मर्ज़ी है कि दुनिया में एकता, तालमेल और बराबरी बनी रहे।

तवहीद को किसी ढांचे में अगर डालना हो तो वो कैसे दिखेगा?

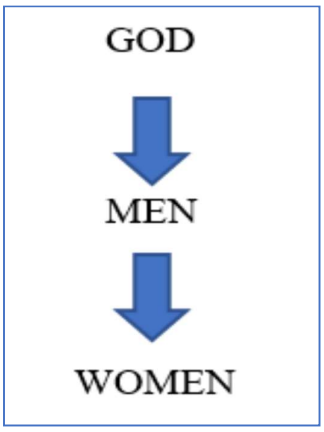

औरत और मर्द के बीच का रिश्ता कुछ इस तरह दिखता है। **अल्लाह – मर्द- औरत** । इस इन्तेज़ाम में बराबरी और तालमेल नहीं है। यह औरतों और अल्लाह के बीच में मर्द को रखता है । एक इंसान को दूसरे से कम समझना यह समझ **तौहीद** के ख़िलाफ़ जाती है। इस समझ में तालमेल, एकता, बराबरी नहीं है। **यह अल्लाह की तौहीदी समझ के** मुताबिक़ **नहीं है। एक** मतवाज़न तख़लीक के मक़सद को पूरा करने के लिए अल्लाह ने औरतों और मर्दों को दुनिया में **खलीफा** बनाया **हैं। सिर्फ** औरत-मर्द **ही नहीं बल्कि सभी** रिश्तों में बराबरी और तालमेल होना चाहिए। **और न** सिर्फ़ इंसानो **के बीच** के रिश्ते में **बल्कि** बाक़ी सभी ग़ैर-इंसानी चीज़ों में भी तालमेल और एकता होनी चाहिए। **किसी** एक इंसान **के ऊपर खुद को रखना** यह **शैतान का दिमाग है। यह** ताक़त के तकबबुर की निशानी है। मर्द को औरत से बेहतर समझना यह **शैतानी** सोच **है** जहाँ कोई बराबरी नहीं है सिर्फ़ घमंड और बड़कपन है।

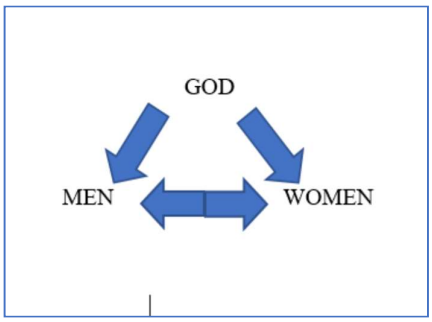

हर इंसान, औरत या मर्द अल्लाह के ख़लीफ़ा है। औरतें घर में, परिवार में, इस्लाम में और समाज में और एक इंसान के रूप में अल्लाह की पूरी एजेंट है। औरतों के पास समाजी, ज़ाती और रूहानी ज़िम्मेदारियाँ निभानी की सलाहियात और ज़िम्मेदारी है **इसलिए तौहीद** का ढाँचा कुछ इस तरह से दिखता है:

Reference: The Ethics of Tawheed over Ethics of Qiwamah by Amina Wadud in 'Men In Charge, Rethinking Authority in Muslim Legal Tradition'.

कलीफा :

पृथ्वी पर सभी मनुष्यों की जिम्मेदारी

'खिलाफा' का मतलब क्या है?

खिलाफा लफ्ज़ 'इस्तिख्लाफ' से लिया गया है.

इस्तिख्लाफ के 3 मतलब हैं:

- खलीफा / उत्तराधिकारी / वारिस
- खलाइफ़ / जनजातियाँ / लोग / पीढ़ियाँ
- कोई है जो अपने लोगों की ज़िम्मेदारी लेता है

कुरान में क्या लिखा है?

आयत नम्बर २:३० में लिखा है, इस दुनिया में मै एक ख़लीफ़ा बनाऊँगा। ज़्यादातर आलिमों का कहना है की ख़लीफ़ा का मतलब है

इंसान। इसलिए अल्लाह ने इंसानों को बनाया ताकि वे इस दुनिया की ज़िम्मेदारी ले सके। इसलिए इंसानों को यह ज़िम्मेदारी दी गई, किसी और मखलूक को नहीं।

तो कहाँ पर क्या गलती हो गयी?

खिलाफा लफ्ज़ का मतलब समय के साथ बदल गया। यह रूहानी ना रहकर सियासी/ राजनैतिक हो गया। इसलिए पहले इसका मतलब था कि सभी इंसान अल्लाह के एजेंट है और इस तरह से दुनिया की देखभाल करते है। बाद में इसका मतलब हो गया कि सिर्फ सियासी / राजनैतिक नेता ही खलीफा हो सकते हैं और वो इस दुनिया में अल्लाह की नुमाइन्दगी करते है । इसलिए पहले के खलीफाओं ने सियासी /राजनैतिक ज़िम्मेदारी ले ली। माना जाता था की उनके पास रूहानी ताकते थीं। उनकी बात की नफ़रमानी करना मतलब अल्लाह की बात की नफ़रमानी करना, ऐसे माना जाता था। वो अपने आप को अल्लाह के भेजे हुए मसीहा समझने लगे और अपना दर्जा ख़ुद ऊपर बना लिया। इस तरह शुरू में ख़लीफ़ा का मतलब था 'सब इंसान'। फिर उसका मतलब बदल गया और ख़लीफ़ा का मतलब बना, 'सियासी नेता'। कुछ और वक़्त के बाद, ख़लीफ़ा का मतलब हो गया, 'मर्द सियाज़ी नेता'। फिर यह मान लिया गया था कि 'सिर्फ मर्द' ही ख़लीफ़ा बन सकते है।

क्या खलीफा का मतलब औरत-मर्द के फ़र्क़ के ऊपर है?

दरअसल समय के साथ, पिदर्शाही सोच की वजह से **यह माना जाने लगा कि** सिर्फ मर्द ही **खलीफा हो सकते हैं।** सच तो ये है कि इंसान के **रूप में** दोनों, औरत और मर्द को इस दुनिया में ख़लीफ़ा बनने की ज़िम्मेदारी मिली है। **दोनों ही** इस दुनिया के मामलों में बराबर के ज़िम्मेदार है। **और** उन दोनो को **अल्लाह** को जवाब देना है। **तो इस्तिखालफ का** मतलब **है** की इंसानी तहज़ीब को बनाने और बढ़ाने में दोनो की ज़िम्मेदारी है। यह रिश्ता इंसान [औरत और मर्द] और अल्लाह के बीच का अहम रिश्ता है।

औरतों और मर्दों को इस दुनिया में क्या ज़िम्मेदारी पूरी करनी है?

तौहीद को हासिल करना यह इंसानो की ज़िम्मेदारी है। तौहीद का मतलब है एक-ईश्वरवाद या अल्लाह की एकता। तौहीद का यह भी मतलब है कि यह सभी मतज़ाद [विरोधाभासी] उसूलों का तालमेल रखता है। अल्लाह ज़िन्दगी भी देता है और मौत भी देता है, अल्लाह नाराज़ होने के साथ-साथ दयालु भी है, यह रात देता है तो दिन भी देता है। इसमें सभी फ़र्क़ को ख़त्म करने की ताक़त है।

तौहीद का मतलब अल्लाह एकजुट भी करता है। यह छोटे से छोटे कण [atom] जो एक दूसरे से इतने अलग है, उन्हें भी साथ लाने का काम करता है। ताके वो अलग रहते हुए भी एक साथ काम करे। यह एकता

के उसूलों पर काम करता है। यह क़ब्ज़ा और कंट्रोल करना नहीं चाहता। यह एक दूसरे को संतुलित/मतवाज़न [balance] करते हुए, एक-दूसरे की मदद करते हुए, सभी को पूरा बनाते है।

तो हम सच में यह कैसे करते सकते हैं?

अगर तौहीद का मतलब है तालमेल रखना, **एकता लाना**, **तो क्या** एकता लाना, तालमेल बनाए रखना यह इंसानी ज़िम्मेदारी नहीं होनी चाहिए? **अगर अल्लाह** जोड़ता है, **तो क्या इंसानों को इस**की मुख़ालिफ़त/उल्टा करना **चाहिए? अगर अल्लाह एकजुट** करता है, **तो क्या इंसानों को** बिखेरने का काम करना चाहिए? बिलकुल नहीं। इंसान **को** वो **करना है जो अल्लाह** इंसानो **के लिए करता है।** और सिर्फ़ इंसानो के बीच नहीं तो पूरी कायनात के बीच एकता बनाए रखना है।

हमें सभी इंसानी और ग़ैर-इंसानी चीज़ों को अल्लाह का रूप समझना चाहिए। सभी चीज़ें अल्लाह की रूहानियत से भरी है। हर हाल में, हर जगह, हमारा काम है तालमेल और एकता लाना। अगर कोई तौहीद को मानता है, तो बराबरी जरूरी है। अगर हम तौहीद के उसूलों को मानते हैं तो हम किसी को भी अपने से कम नहीं समझेंगे। हम औरत-मर्द के बीच में भी यह उसूल का इस्तेमाल करेंगे । आज औरतों की समझ और शऊर में इज़ाफ़ा हुआ है और उन्हें अपने से कम समझना तौहीद के उसूलों के ख़िलाफ़ जाता है। तो पहला काम है औरतों और मर्दों को एक समान समझना। दोनो का दर्जा एक है और दोनो का दर्जा अल्लाह के सामने एक है।

एक ख़लीफ़ा होने के नाते, औरत और मर्द में क्या ख़ूबियाँ होनी चाहिए?

खलीफा बनने के लिए 6 ज़रूरी ख़ूबियाँ ये हैं:

- ज्ञान / इल्म [39: 9, 96: 1]
- न्याय / अद्ल [40:17, 42:15 और 16:90],
- बुद्धि / अक़्ल [2:242, 12:2, 29:43, 22:46]
- ईमान की आज़ादी / विश्वास की स्वतंत्रता / हुर्रियत अल-मुतकद [10:99, 18:29]
- विविधता / इख्तिलाफ [11:118] और
- प्यार / महबाह [30:21]

वली / विलाया : बराबरी की सोच

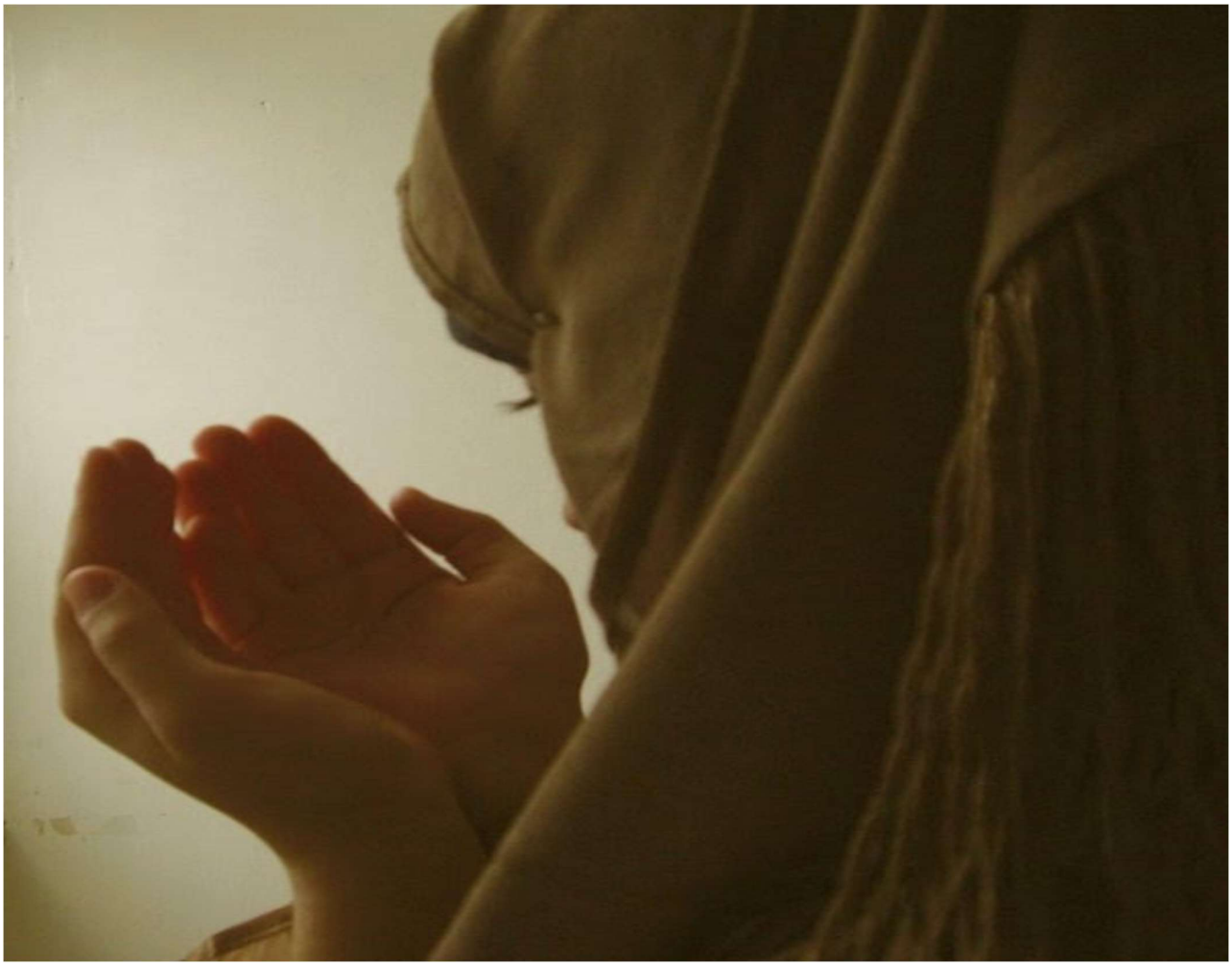

भारत में विलाया शब्द का इस्तेमाल कैसे हुआ है?

निकाह के वक्त हमने विलाया नहीं बल्कि 'वली' लफ्ज़ जरूर सुना है। निकाह को मुकम्मल करने के लिए, दूल्हन की तरफ़ से वली मुक़र्रर किए जाते है। यह मुल्क के हर भाग में नहीं होता है। कुछ राज्यों में यह एक रिवाज है। अगर दोनो बालिग़ है और क़ाज़ी मौजूद है निकाह पढ़ाने के लिए तो निकाह में वली की ज़रूरत नहीं है । इस के बावजूद निकाह में वली होने का रिवाज अभी भी क़ायम है.

भारतीय निकाह में वली का काम दुल्हन की नुमाइंदगी करना है। वली या तो दुल्हन के वालिद, दादा, भाई, चाचा या वालिद की तरफ से कोई भी मर्द रिश्तेदार होते है। वली वो भी होते है जिन्होंने ने यह निकाह तय करने में एक अहम किरदार निभाया हो। ख़ासकर जब लड़की नाबालिग़ हो।

यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि विलायत का रिवाज दुल्हन के शक्सियत को कम करता है। मुस्लिम शादी दो बालिग़ लोगों के बीच एक संजीदा रिश्ता है। अगर दूल्हे को वली की ज़रूरत नहीं होती है, तो दुल्हन को इसकी ज़रुरत क्यों होनी चाहिए? हाँ अगर वो नाबालिग़ है और शादी का फ़ैसला नहीं ले सकती है, तभी ही वली की ज़रूरत महसूस होगी। लेकिन लड़की नाबालिग़ है तो शादी होनी ही नहीं चाहिए। और अगर बालिग़ है तो वली की क्या ज़रूरत?

शादी के दायरे से बाहर वली का मतलब क्या है?

वली औलिया का एकवचन/singular है जिसका मतलब है – स्वामी/मास्टर, अधिकारी, हिफाज़त करनेवाले, दोस्त, मदद करनेवाले, नज़दीकी सपोर्ट करनेवाले, मेहरबानी करनेवाले। इस के इलावा, वली वो भी हैं जो इन्तेज़ाम करते है, जो हिफाज़त करने का काम करते है या वह जो मुल्क के मामलों को देखता है।

- वली का मतलब है 'कोई या कुछ नज़दीक'।
- वली एक 'दोस्त, करीबी सहयोगी, रिश्तेदार", एक हिफाज़त करनेवाले" या एक "सहायक/सपोर्ट करनेवाले' भी हो सकते है।

- वली का मतलब 'कानून के ज़रिए किसी इंसान पर हक रखना।
- औलिया वली का बहुवचन/plural है जिसका मतलब है गठबंधन/इतेहाद, आपसी मदद
- अल-वली अल्लाह की कई खूबियों में से एक है जिसका मतलब है जो मज़बूत करता है, हिफाज़त करता है और सपोर्ट/समर्थन करता है।

इस्लामिक नारीवादियों ने वली / अवलिया को कैसे समझा है?

मुस्लिम औरतों और यहां तक कि मर्दों को भी इस लफ्ज़ की समतावादी/बराबरीवाली समझ से दूर रखा गया है। यह कि औरतें और मर्द अल्लाह की नज़र में बराबर हैं और एक-दूसरे के बराबर है. यह बात हमारे मदरसो और अपने घरों में भी नहीं होती है। इस्लाम पर लिखी जाने वाली किताबों में भी नहीं। न सिर्फ निजी [personal] दायरे में, बल्कि अवामी/सार्वजनिक [public] दायरे में भी, दोनों अपने हक़ों और जिम्मेदारियों में बराबर हैं।

कुरान की मदद से हम विलाया को आज के समय के हिसाब से कैसे समझ सकते है?

आयात 9:71 में बहुत खुली तरह से कहा गया है: *मानने वाले मर्द और औरत एक दूसरे के औलिया है। वो अच्छे काम करते है [अल-मरूफ] और बुराई [अल-मुनकर] से दूर रहते है। वो नमाज़ पढ़ते है और ज़कात देते है। और अल्लाह और उसके रसूल को मानते है।*

सब से पहले, यह समझना है कि यह आयत औरत और मर्द दोनो के लिए है। दूसरा, उन दोनो को कहा गया है कि एक दूसरे के औलिया बने। अगर हम वली के तीनों मतलब देखे तो उस से हमें यह समझता है कि औरत और मर्द एक-दूसरे के करीब हैं, वे एक-दूसरे के दोस्त और मददगार हैं, उनके एक-दूसरे पर हक़ है और वो एक-दूसरे की हिफ़ाज़त करनेवाले है। हर मामले में वे अच्छे होने, अच्छा करने और बुरे को मना करने की अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा करने में एक दूसरे के बराबर हैं।

अच्छे काम करने और बुराई से बचने की बात सब से पहले की गयी है। उन्हें पहले एक-दूसरे की तरफ़ अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करना है। फिर समाज का हिस्सा होने के नाते अपनी ज़िम्मेदारी निभानी है। नमाज़ पढ़ना, ज़कात देना या अल्लाह और पैगम्बर की बात मानने की बात उस के बाद आती है। जहाँ भी रहे, जो भी करें, अच्छाई करे, यह हर औरत और मर्द की ज़िम्मेदारी है। जिस से ख़ुद का या दूसरों का नुक़सान हो उस से दूर रहने की उनकी ज़िम्मेदारी है। यह समझना बहुत ज़रूरी है कि औरत और मर्द की बराबरी की बात आयत की पहली लाइन में दी गयी है।

तो, वली/विलाया सच में तो बहुत हिम्मत और ताक़त देने वाले अलफ़ाज़ है?

हां, ज़रूर है। समाज की तरक़्क़ी के लिए औरत और मर्द यकसा तरीके से ज़िम्मेदार हैं। उन्हें एक सामाजिक इंसान के रूप में अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर चलना होगा। वे समान इंसान और समान नागरिक/शहरी है।

मुस्लिम महिलाओं के सवालों को 'वली' जैसे ताक़त देने वाले लफ्ज़ के नज़रिए से समझना चाहिए। इस्लामिक नारीवादियों ने इस बहतरीन आयत को उजागर करने के लिए अच्छा काम किया है। इस्लामी नारिवादीयो ने पिदर्शाही सोच रखने वाले लोगों को और आम समाज को यह दिखा दिया है कि अल्लाह मर्द और औरत में बराबरी का रिश्ता देखना चाहता है जिस की बुनियाद पर एक इंसाफ़पसंद और समान समाज बने।

Reference: An Egalitarian Reading of the Concepts of Khilafah, Wilayah and Qiwamah, Asma Lambrabet

अहसन :

सुंदरता और अच्छाई को पुनः प्राप्त करना

अहसन के बारे हम ने ज़्यादा क्यूँ नहीं सुना?

ऐसी बात नहीं है कि हमने अहसन, अद्ल, तौहीद या खलीफा लफ्ज़ नहीं सुने हैं। मसला यह है की इन लफ़्ज़ों को हमने अपनी ज़िंदगी में नहीं उतारा है। और ख़ासकर औरतों के सवालों पर हम ने इन लफ़्ज़ों को जानभूझकर लागू नहीं किया। ना हम वो चाहते थे ना हम में वो कुव्वत थी। ख़ासकर वो मामले जो पारिवारिक मसलों से जुड़े हुए है।

इस्लामी न्यायशास्त्र/क़ानून के बारे में इतनी चर्चा हुई है कि हमें यह नहीं पता की इस्लामी दर्शन [philosophy] भी है, इस्लामी धर्मशास्त्र [theology] भी है, इस्लामी ब्रह्मांड [cosmology] विज्ञान भी है। अच्छाई, रहम, दान, हिम्मत, सबर, प्यार और करुणा पर कुरान में कई आयतें हैं। हम इसके बारे में भी बात करते हैं लेकिन जब औरतों के मुद्दों की बात आती है, तब यह सारे उसूल हम आसानी से भूल जाते हैं। और हम इन उसूलों का इस्तेमाल क़ानून बनाते वक़्त नहीं करते। इन के बारे में बात भी नहीं करते।

बुद्धि / मन / सोच पर कुरान का क्या कहना है?

कुरान में खुद से सोचना, ज़हन का इस्तेमाल करना, अक़्ल से काम लेना – इस पर बहुत ज़ोर दिया गया है। अकीदे का मतलब सिर्फ़ यह नहीं है की हम कुछ रस्में अदा करें बल्कि यह भी है की हम अपनी अक़्ल का इस्तेमाल करें, सोचे, समझे, ग़ौर करे, ठीक से सुने, देखे, सवाल पूछे।

आयत 47:24 **में लिखा है – क्या वे कुरान में लिखी बातों पर सोचते नहीं है? या उन के दिलो पर ताले लगे हैं**?

आयत 8:22 **कहता है, अल्लाह की नज़र में सब से बदतर इंसान वो है जो अपनी अक़्ल का इस्तेमाल नहीं करते.**

इसलिए यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इन लफ़्ज़ों/खयालों को न सिर्फ़ उजागर करें बल्कि यह भी सोचे की उनको हम अपनी ज़िंदगी में कैसे उतार सकते है।

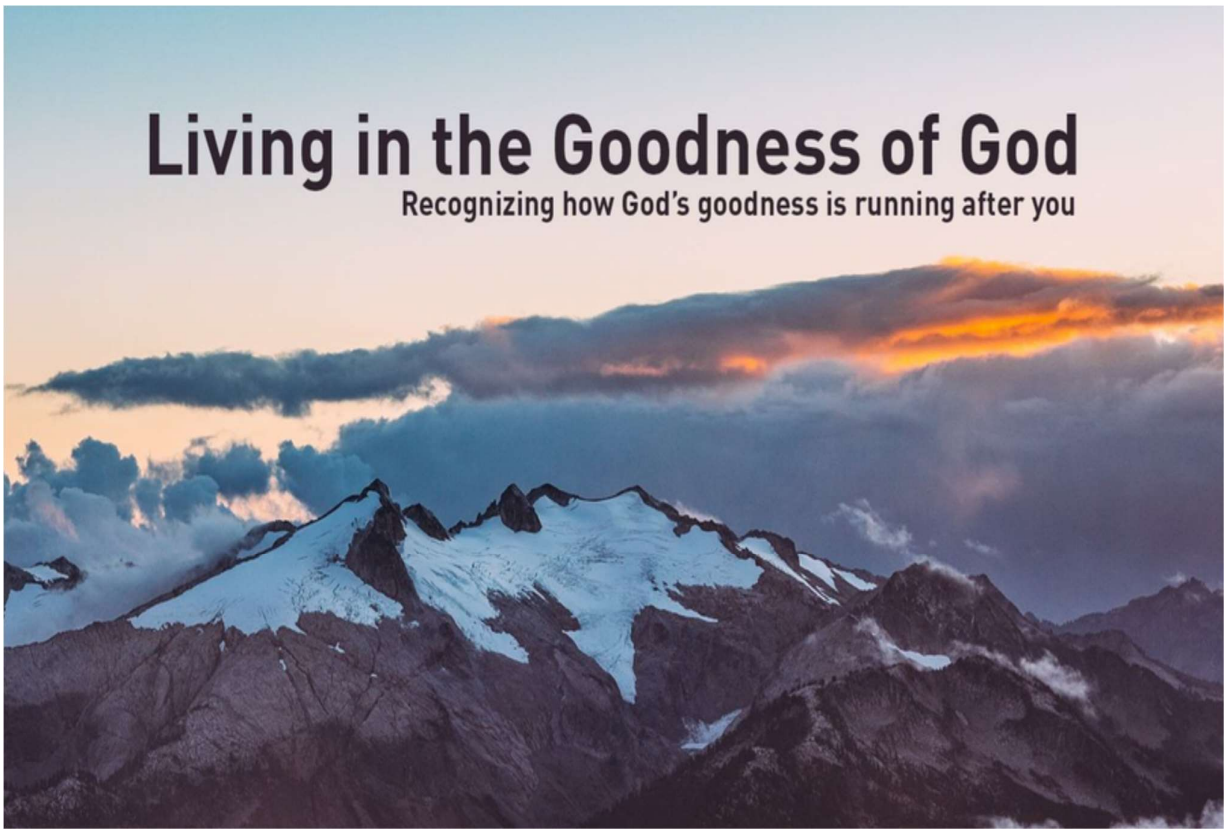

इस्लाम के नैतिक/इखलाकी ढांचे से आपका क्या मतलब है?

इखलाकी उसूलों का चश्मा लगाके इस्लाम को देखने की ज़रूरत है। वो उसूल जो इस्लाम ने ख़ुद दिए है। वो उसूल कौन से है वो हमें पता होने चहीये। हम ने पहले तौहीद का मतलब समझा था। और यह समझा था कि तौहीद सिर्फ़ एक मज़हबी पहलू नहीं है। उसे हमें अपनी रोज़ के ज़िंदगी में उतारना चाहिए। हम ने ख़लीफ़ा और विलाया का भी मतलब समझा है, जहाँ हर इंसान अल्लाह की एजेंट है जिसका काम है संतूलन, तालमेल, हिफ़ाज़त और सपोर्ट बनाये रखना। ठीक उसी तरह अहसन, इंसाफ़, बराबरी, हिकमत/अक़्ल और रहम – इन इखलाकी उसूलों को अपनी रोज़ की ज़िंदगी में हम कैसे उतार सकते है। हम आज अपनी ज़िन्दगी जिस तरह से जी रहे हैं, हम देखते हैं कि हमें जो करना चाहिए और हम जो कर रहे है उस में बहुत दूरी है। अल्लाह ने हम इंसानों से जो उम्मीद लगाई है क्या हम उसे पूरा कर रहे है?

तो अहसन क्या है?

तौहीद, खलीफा और विलाया के साथ हम अहसन के उसूल को भी जोड़ेंगे। अहसन लफ्ज़ की जड़, **'hsn'** है जिसका मतलब है ख़ूबसूरती और अच्छाई। हसन, अहसन, हुस्न – इन लफ़्ज़ों के मतलब भी ख़ूबसूरती और अच्छाई है। अल्लाह को अस्मा-उल-हुस्ना कहा जाता है।

अल्लाह ख़ूबसूरती और अच्छाई से भरा है। अहसन वो सोच है जिस से आप अल्लाह से रूबरू होते है। अल्लाह के रूबरू खड़े होते है। क्योंकि अल्लाह ख़ूबसूरती/अच्छाई है, अहसन है तो क्या अहसन इस्लाम का बुनियादी उसूल नहीं होना चाहिए? अहसन लफ्ज़ कुरान में 194 **बार दिखाई देता है, जिस से यह समझ में आता है की इस लफ्ज़ की कितनी अहमियत है।**

अगर दुनिया बनाने वाला अहसन है तो उस की बनाई हुई दुनिया भी अहसन होगी – ख़ूबसूरत और अच्छी। जो कुछ इस कायनात में है वो अहसन है; ख़ूबसूरत और अच्छा है। क्या हम खूबसूरती और अच्छाई की ओर नहीं झुकते हैं? क्या हम क़ुदरत में रहना पसंद नहीं करते हैं? क्या हमें समुन्दर का किनारा, हरियाली, नदी, पहाड़ अच्छे नहीं लगते? क्या हमें अच्छा संगीत सुनना पसंद नहीं है? या एक नाटक या एक नृत्य, एक पेंटिंग? क्या हम सभी को बच्चे की हँसी की खूबसूरती पसंद नहीं है?

क़ुरान में कौनसी आयतें है जहाँ अहसन का ज़िक्र हुआ है?

23:14 – अल्लाह बेहद ख़ूबसूरत और अच्छा है

39:23 – अल्लाह का संदेश ख़ूबसूरत / अच्छा है

32:7 – खूबसूरती / अच्छाई के ज़रिए अल्लाह ने सब कुछ बनाया है। बनाने का तरीका ख़ुद ख़ूबसूरत और अच्छा है

95:4 – अल्लाह ने इंसान को सबसे ख़ूबसूरत / अच्छे तरीक़े से बनाया। तो बनानेवाला, बनाने का तरीका और बनी हुई चीज़, तीनो, ख़ूबसूरत और अच्छे है। बात यहीं खत्म नहीं होती है। हमें इस अच्छाई और खूबसूरती को बनाये रखने की और उसे ज़्यादा उजागर करने की ज़िम्मेदारी भी मिली है।

28:77 – ख़ूबसूरती/अच्छाई को सामने लाओ क्यूँकि वो तुम्हें दी गयी है सामने लाने के लिए। और दुनिया में बुराई मत फैलाओ, वो ना फैलाओ जो ग़लत और ग़ैर इंसाफ़ी है।

2:83 – माँ-बाप, रिश्तेदारों, यतीमो, कमजोरों और जरूरतमंदों के साथ ख़ूबसूरती और अच्छाई से रहो। और लोगों से अच्छा बोलो_और ज़कात दो और दुआ करो।

याद रखना ज़रूरी है कि खलीफा होने के नाते हमारी यह ज़िम्मेदारी है की हम तालमेल, संतूलन बनाए रखे और ख़ूबसूरती और अच्छाई सामने लाने का काम करते रहे।

अहसन और अद्ल के बीच क्या रिश्ता है?

अहसन और अद्ल/इंसाफ के बीच एक साफ़ रिश्ता है। 16:90 में, अल्लाह अपने लोगों के साथ इंसाफ़ और रहम से पेश आने की बात कही है। और हर वो चीज़ से दूर रहने को कहा है जो बुरी है, शर्मनाक और ज़ालिम है। हमें इस बात का हमेशा ख़याल रखना चाहिए। इंसाफ़ से ऊपर है ख़ूबसूरती और अच्छाई।

औरत/मर्द के रिश्ते पर अहसन का क्या असर होना चाहिए?

30:21 में कहा गया है, मैंने तुम्हारे लिए अपने बीच से जीवनसाथी बनाए हैं ताकि तुम सुकून से रह सको। अल्लाह ने दोनों के बीच प्यार और रहम दिया है। इसलिए अहसन औरत और मर्द के बीच के रिश्ते की बुनियाद है। और मक़सद यह है कि दोनो सुकून से रहे। और अगर प्यार और रहम है तो सुकून आ ही जाएगा। और अगर रिश्ते में सुकून है, प्यार और उंसियत है, इज़्ज़त है तो परिवार में और समाज में भी वो ही सुकून और संतूलन मिलेगा।

कुरान में कौन सी आयतें है जो अहसन के क़रीब है?

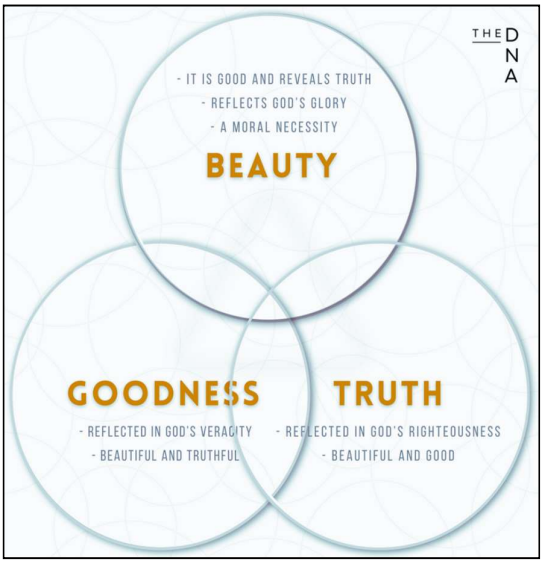

कई हैं, कुछ नीचे दी गयी हैं:

1. मज़हबी होने का मतलब सिर्फ़ यह नहीं की आप अपना चेहरा मग़रिब या मशरिक़ की तरफ़ मोड़े। बल्कि इस में है की आप अल्लाह, आखिरी दिन, फ़रिश्ते, किताब, पैगंबर को माने। और अपनी दौलत से प्यार होते हुए भी उसे अपने रिश्तेदारों को, यतीमो को, जरूरतमंदों को, यात्री को दें। गुलामों को आज़ाद कराएं, नमाज़ पढ़ें और ज़कात दें, अपना वादा पूरा करें, गरीबी और जंग में सबर रखें। यह लोग ही है जो सच्चे है और सही राह पर हैं। [2:177]

2. अल्लाह हुक्म देता है की इंसाफ़ करो, अच्छा व्यवहार करो और रिश्तेदारों की मदद करो और अनैतिकता और बुरे और ग़लत काम और ज़ुल्म से दूर रहो। अल्लाह आप को हुक्म देता है ताके आप इसे याद रखो। [16:90]

3. क्या अच्छाई का इनाम अच्छाई के इलावा और कुछ हो सकता है? [55:60]

4. जो अल्लाह की राह में अच्छे और बुरे वक़्त में ख़र्च करते है और जो ग़ुस्से से दूर रहते है और जो लोगों को माफ़ करते है और अल्लाह अच्छाई करने वालों को पसंद करता है। [3:134]

5. और इस दुनिया में सुधार लाने के बाद इस में ख़राबी मत पैदा करो। अल्लाह से डरो और अल्लाह की तरफ़ जाओ। अल्लाह का रहम उन पर होता है जो अच्छाई करते है। [7:56]

6. अच्छे काम करने वालों पर कोई इल्ज़ाम नहीं है। [9:91]

7. उनका मांस और ख़ून अल्लाह तक नहीं पहुँचेगा, लेकिन आप की अच्छाई अल्लाह तक पहुँचेगी और भलाई करने वालों के तरफ़ अच्छा व्यव्यार करें। [22:37]

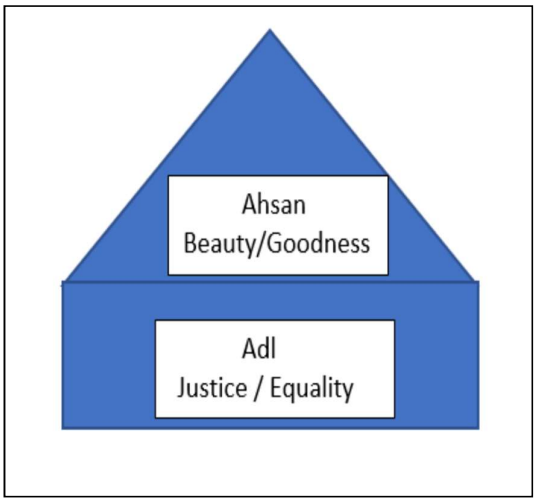

8. और जब उसने अपनी पूरी ताकत हासिल कर ली और वह ज़हनी तौर पर मज़बूत हो गए तब हमने उन्हें इल्म और फ़ैसला करने की ताक़त दी। और इस तरह हम ने अच्छा करने वालों को इनाम दिया। [28:14] और बहुत सारी आयातें है जहाँ अल्लाह ने इंसानों को अच्छा करने और अच्छा होने का हुक्म किया है।
37:80, 37:105, 37:110, 37:121, 39:34, 77:44, 31:3, 29:69, 16:128, 3:148, 5:85, 46:12, 51:16

Reference:

- Ethics of Ihsan: Beauty and Goodness in Muslim Family, Series of Knowledge Building Webinar, Musawah
- Quran.com

दस कुरानी आयातें जो सभी को पता होनी चाहिए

इ-स-अ-अ-र आयतें

इन्साफ, समानता, अक्ल, अहसन, रहम

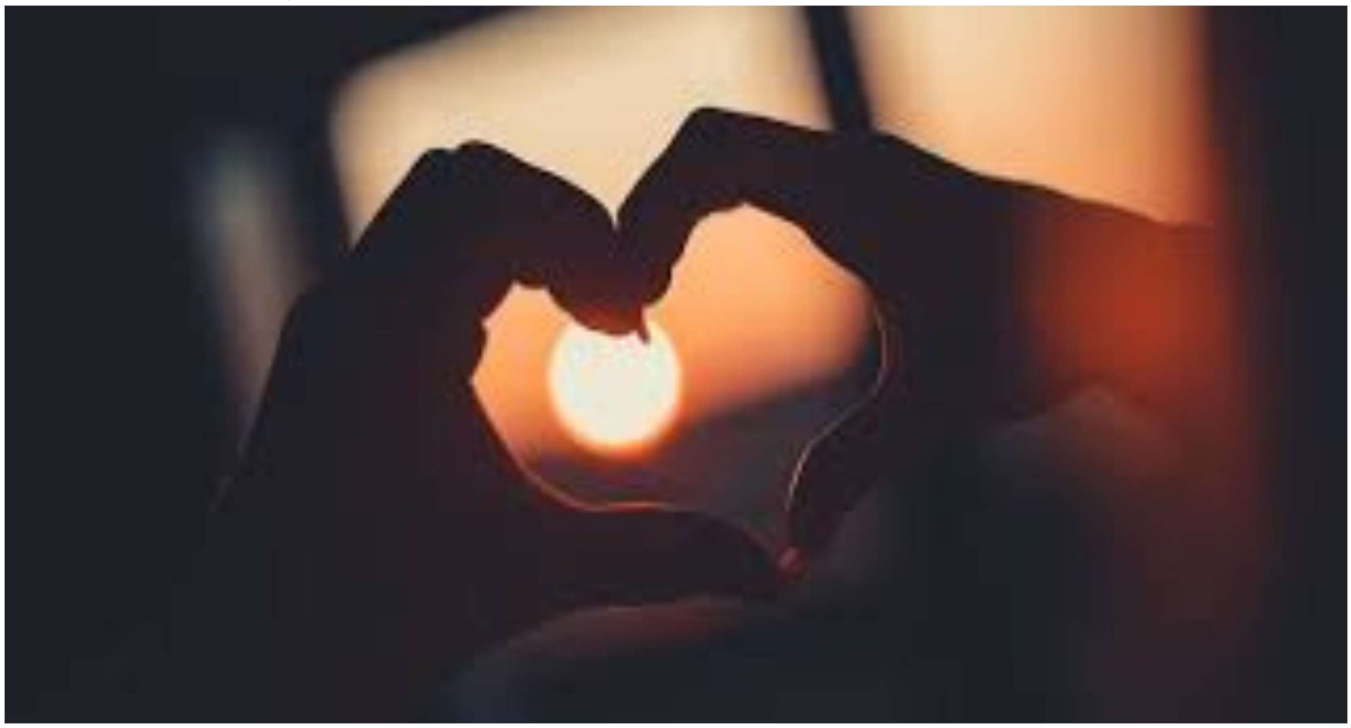

मज़हब पर मर्दों की मकतेदारी का क्या असर हुआ है?

अगर मुस्लिम औरतों ने क़ुरान को पढ़ा होता, उसका तर्जूमा किया होता और उसके मायने निकाले होते तो आज यह मुस्लिम समाज बहुत बहतर हाल में होता। बहुत चालाकी से, मुस्लिम मर्दों ने खुद को तालीम देने का काम किया, ख़ासकर मज़हबी तालीम। मुस्लिम मर्दों को पता है कि इल्म ताक़त है और अगर मुस्लिम औरतें वो पढ़ने और समझने लगीं जो लिखा गया है तो वो अपने लिए भी वो फ़ायदे उठाएंगी जो फायदे मर्दों ने अब तक ख़ुद के लिए उठाए है।

ईसार/ISAAR आयातों को जाने

ई – इंसाफ़

स – समानता / बराबरी

अ – अक़्ल

अ – अहसान [अच्छाई और ख़ूबसूरती]

र – रहम

बहुत ही चालाकी से औरतों को कहा गया कि वो क़ुरान को उस भाषा में पढ़ें जिसे वो समझती नहीं है। कहा गया कि क़ुरान को अरबी में पढ़ना सवाब है जब की अरबों को छोड़ कर पूरी दुनिया में किसी को अरबी नहीं आती। सिर्फ कुरान को पढ़ना और समझना ही नहीं बल्कि इस का तर्जूमा और तफ़सीर लिखने के काम को भी मर्दों ने ख़ुद तक महदूद रखा। वो कहते है क़ुरान पढ़ना है तो विदेशी भाषा में पढ़ो। अगर उसे अपनी भाषा में पढ़ भी लिए तो उस में से मायने निकालने की कोई ज़रूरत नहीं है। अगर मायने निकाले है तो उस पर अपना दिमाग़ लगाने की ज़रूरत नहीं है। यह भी देखने की ज़रूरत नहीं है कि वो मायने किसने निकाले है, किस का तर्जूमा है और उस तर्जुमे के पीछे मक़सद क्या है। और अगर सब कुछ अच्छे से समझ आ गया है तो भी अपना मुँह खोलने की ज़रूरत नहीं है। क्यूँ की मज़हब यह आलिमों और मुफ़्तियों और विद्वानों की जागीर है। एक औरत होने के नाते तुम्हें इस जागीर में जाने की ज़रूरत नहीं है। इस तरह मज़हबी इल्म की मकतेदारी मर्दों के ही हाथों में रही जिस की वजह से दुनिया भर में करोड़ों औरतों की ज़िंदगी बर्बाद हुई है। मर्द क़ुरान पढ़ेंगे, समझेंगे, तर्जूमा करेंगे, तफसीर करेंगे और औरत सिर्फ़ उन को सुनेंगी और अमल करेंगी, सवाल नहीं उठाएँगी और अपनी ज़िंदगी बर्बाद करेंगी।

इस्लाम की महिला आलिमों/इस्लामी नारीवादियों ने क्या किया है?

वक़्त बहतरी के लिए बादल रहा है। कई मुस्लिम महिला आलिमाओं ने क़ुरान के अपने तर्जुमे लिखे, तफ़सीर लिखी और पुरुषों के लिखे तर्जूमो और

तफसीरों को चैलेंज किया। उन्होंने सिर्फ़ लफ़्ज़ों पर ध्यान नहीं दिया बल्कि लफ़्ज़ों के आगे जाके इस्लाम के उसूलों की बात की, जिन उसूलों के चलते सिर्फ़ औरत मर्द ही नहीं बल्कि हर इंसान एक दूसरे के बराबर है।
इस्लाम के उसूल जो क़ुरान के ज़रिए बताए गए है, उन्हें जानने के बाद बहुत हिम्मत मिलती है। और इन उसूलों की वजह से क़ौम के अंदर और बाहर दोनो में अपने हक़ के लिए लढने की ताक़त मिलती है। और इन उसूलों को GBJEWC/ईसार के माध्यम से याद किया जाता है।
GBJEWC - Goodness, Beauty, Justice, Equality, Wisdom, Compassion
किसी भी मुसलमान को अपने आप को मुसलमान कहलाने के लिए इन उसूलों में मानना ज़रूरी है।

समानता/बराबरी पर कुरान की आयतें कौनसे है?

1. अल्लाह ने महिलाओं और पुरुषों दोनों को इंसान बनाया, ताकि वे इस दुनिया की ज़िम्मेदारी ले सकें। इस दुनिया के सभी मामलों की ज़िम्मेदारी दोनों पर सौंपी गई है।

   [२: ३०] - मैं पृथ्वी पर एक ख़लीफ़ा बनाऊंगा। ज़्यादातर आलिमों के लिए ख़लीफ़ा यानी 'इंसान'

2. औरतों और मर्दों को एक नफ्स से बनाया गया है और इसलिए वो बराबर हैं। एक ही नफ्स से आए है इस लिए दोनो को एक दूसरे की ज़रूरत है।

   [4:1] ऐ लोगों, अपने अल्लाह से आगाह रहो जिसने तुम्हें एक नफ्स से बनाया है और उसमें से उसका साथी बनाया, और उन में से कई और मर्द और औरतें बनायी।]

3. अल्लाह के सामने औरत और मर्द महिला और पुरुष बराबर हैं। अल्लाह के आगे समर्पण करना, सच्चाई से रहना, हिम्मत रखना, गीबत से दूर रहना – इन सब मामलों में औरत और मर्द अल्लाह के सामने

बराबर है। औरत के लिए कोई छूट नहीं है क्योंकि वह एक औरत है और मर्द के लिए कोई ख़ास इन्तेज़ाम नहीं है क्योंकि वह एक मर्द है।

33:35 – **'सच में, अमन से समर्पित होने वाले मुस्लिम पुरुष और मुस्लिम महिलाएं, विश्वास करने वाले पुरुष और विश्वास करने वाली महिलाएं, फ़रमाबरदार पुरुष और फ़रमाबरदार महिलाएं, सच्चे पुरुष और सच्ची महिलाएं, सबर करने वाले पुरुष और सबर करने वाली महिलाएं, शाइस्ता पुरुष और शाइस्ता महिलाएं, ख़ैरात देनेवाले पुरुष और ख़ैरात देनेवाली महिलाएं, रोज़ा रखने करने वाले पुरुष और रोज़ा रखने वाली महिलाएं, वे पुरुष जो अपने निजी अंगों की हिफ़ाज़त करते हैं और ऐसा करने वाली महिलाएं, और वे पुरुष जो अक्सर अल्लाह को याद करते हैं और जो महिलाएं ऐसा करती हैं – उनके लिए अल्लाह ने माफ़ी दी है और बड़ा इनाम रखा है।**

4. औरतें और मर्द उस चीज के मालिक हैं जो वे कमाते हैं या हासिल करते हैं। कुछ मर्दों को औरतों के मुक़ाबले ज़्यादा मिलता है तो कुछ औरतों को मर्दों के मुक़ाबले ज़्यादा मिलता है। अल्लाह की नज़र में सब बराबर है।

४:३२] – उन से ना जलो जिनको अल्लाह ने नवाज़ा है। मर्दों के लिए वो

मर्द-औरत के रिश्ते में रहम, अच्छाई, सुकून, परवाह को लेकर क़ुरान की आयातें कौनसी है?

1. शादी का मक़सद है कि दो लोग एक दूसरे के साथ सुकून से रहे। उन के बीच मोहब्बत हो, इज़्ज़त हो, परवाह हो, ख़ुशी और इत्मिनान हो। बीवी और शौहर के बीच का रिश्ता कुछ इस तरह से होना चाहिए। और हमारी कोशिश यही होनी चाहिए की इस रिश्ते में हम वो सारी चीज़ें ला सके।

[३०:२१ – अल्लाह की निशानियों में से एक यह है की उस ने आप में से ही एक दूसरे का जोड़ा बनाया ताके आप एक दूसरे के साथ सुकून और इत्मिनान से रह सके। अल्लाह ने आपके दिल में एक दूसरे के

लिए प्यार और परवाह डाला है। जो लोग सोचते है उनके लिए इस में निशानी है।

2. महिला और पुरुष एक-दूसरे के लिए बने हैं, वो एक-दूसरे की ढाल है और एक दूसरे की हिफ़ाज़त करते है। सिर्फ एक ही सपोर्ट, देखभाल और हिफ़ाज़त दे ऐसा नहीं कहा गया है बल्कि ये कहा है कि वो दोनो ऐसा कर सकते है। औरत और मर्द एक दूसरे के लिए हैं सुकून और सद्भाव का जीवन जीने के लिए।

[२:१८७] वे आपके लिए एक लिबास हैं और आप उनके लिए एक लिबास हो . . .

3. महिला और पुरुष दोनों एक दूसरे के समर्थक/मदद करनेवाले हैं, एक दूसरे को सपोर्ट करने वाले है। अल्लाह दोनों से अच्छा करने और बुराई से बचने की उम्मीद रखता है।

[९:७१] मर्द और औरत एक दूसरे के awliya [सहयोगी] हैं। वे अल-मारूफ [अच्छाई] करते है और अल-मुनकर [बुरे] से मना करते हैं, वे नमाज़ पढ़ते है और जकात देते हैं और अल्लाह और उसके रसूल को मानते है।

कौन सी कुरान की आयत में ख़ूबसूरती और अच्छाई की बात हुई है?

अल्लाह इंसानों को ख़ूबसूरती/ अच्छाई दिखाने को कहता है क्योंकि अल्लाह ने ख़ूबसूरती/अच्छाई उनको दी है। इंसान को कहा गया है कि वो ऐसा कुछ भी नहीं करे जिस से दुनिया में बुराई फैले और नाइंसाफ़ी और नुक़सान हो।

[२८:७७] और जैसे अल्लाह ने तुम्हारा भला किया है वैसा तुम भी भला करो। और इस दुनिया में बुराई मत फैलाओ, अल्लाह को बुराई फैलाने वाले पसंद नहीं है।

इंसाफ़ और इल्म पर कौनसी आयतें है?

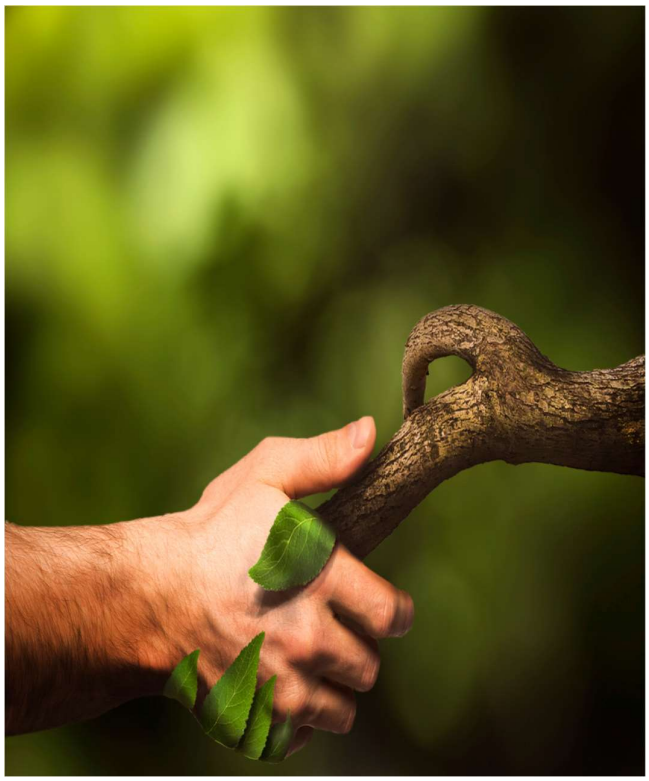

- अल्लाह इंसाफ़, रहम और अपने रिश्तेदारों से अच्छाई करने को कहता है और बुराई, ज़ुल्म से दूर रहने को कहता है। अल्लाह कहता है अपने हर कहे और करे पर ध्यान रखो। इंसाफ़ के ऊपर अच्छाई है।

  [१६:९०] - अल्लाह इन्साफ और अच्छे बरताओ का हुक्म देता है। और रिश्तेदारों की मदद करने को कहता है और बुरे काम, बुरा व्यवहार और ज़ुल्म करने से मना करता है।

- अल्लाह सभी इंसानो को अपनी अक़्ल इस्तेमाल करने को कहता है, सोचने और समझने को कहता है। इस्लाम में इल्म, हिकमत, अक़्ल, फ़ैसला करने का शऊर और सामान्य समझ पर ज़ोर दिया गया है।

  [२८:१४] -और जब वह ताक़तवर हो जाते है और दिमाग़ से मज़बूत हो जाते है हम उनपर इल्म और फ़ैसले लेने का शऊर देते है। और इस तरह से हम अच्छा करने वालों को इनाम देते है।

क़ुरान २३ साल तक नाज़िल होता रहा; अलग वक्तो में, अलग हालातों में. और हर बार ये ही बात बोली गयी कि एक दूसरे के साथ अच्छे से रहो, अच्छे काम करो, एक दूसरे को सपोर्ट करो और एक दूसरे की इज़्ज़त करो। यह उसूल हर वक़्त, हर जगह के लिए मुनासिब है। अभी यह वक़्त आ गया है कि हम जब भी मुस्लिम औरतों के सवालों की बात करें तब इन उसूलों को सामने रखकर बात करें.

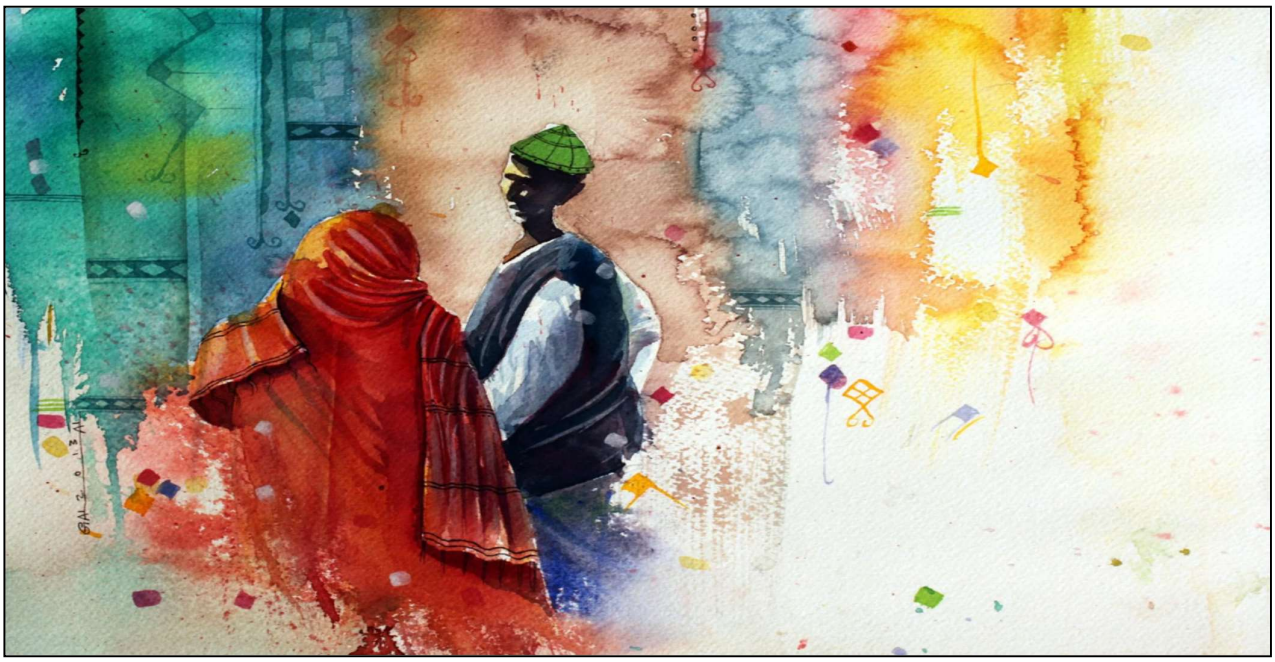

क़व्वामूना / किवामह - 1

पिदर्शाही नज़रिए से इसे समझना

कुरान में औरत-मर्द की बराबरी के बारे में बहुत सी आयतें है, लेकिन इस के बावजूद मुस्लिम महिलाओं के हालात दूसरी क़ौमों की महिलाओं के बनिस्बत ख़राब है, ऐसा क्यूँ?

अब वक़्त आ गया है कि इस्लामी नारीवादी औरतें अपनी आवाज़ उठाए और पुरानी घिसी पिटी सोच रखने वाले पिदर्शाही आलिमों को चैलेंज करे। इन पिदर्शाही आलिमों ने कुछ कुरान की आयतों को उठाया और इसका इस्तेमाल औरतों के ख़िलाफ़ किया। और औरतों की हैसियत कम कर दी जब कि क़ुरान ने औरतों को बराबर का इंसान समझा है।

आइये, हम एक ऐसी आयत को देखें;

4:34. इस आयत का इस्तेमाल करके मर्दों को औरतों से ऊँचा बना दिया गया। ना सिर्फ़ औरतों का दर्जा कम कर दिया गया बल्कि उस पर ज़ुल्म करने को भी जायज़ ठहराया गया। मर्दों का हक है औरतों पर, वो उस पर हुकूमत

कर सकते है। औरतों ने मर्दों की फ़रमाबरदारी करनी है और अपना दर्जा कम कर के अपनी ज़िंदगी मर्द के हिसाब से बितानी है।

क्या हम 4:34 पर थोडी और चर्चा कर सकते हैं?

पूरी आयत ऐसी है:

मर्द औरतों के रक्षक और सम्भालने वाले हैं, क्योंकि अल्लाह ने दूसरे की बनिस्बत एक को ज़्यादा ताक़त दी है, और क्योंकि वो अपने पैसे में से उनपर ख़र्च करते है। इसलिए अच्छी औरतें मर्दों की फ़रमाबरदार होती है, और शौहर की ग़ैरमजूदगी में उस की रखवाली करती हैं जिसकी अल्लाह चाहता है की वो रखवाली करे। वो औरतें जिन से आप को डर है की वो बेवफ़ाई करेंगी और बुरा व्यवहार करेंगी, उन को पहले चेतावनी दे, फिर बिस्तर अलग कर दे और फिर भी ना माने तो उन्हे हल्का सा मारे। लेकिन अगर वे फ़रमाबरदारी पर लौट आती है तो उनके ख़िलाफ़ ना जाए।

घिसीपिटी सोच रखने वाले आलिम या शास्त्रीय न्यायविद इस आयत के ज़रिया मर्दों को ऊँची जगह दिए है। वो कहते है:

1. औरतें मर्दों के बराबर नहीं हैं, वे अपनी हिफ़ाज़त और गुज़ारे के लिए मर्दों की मोहताज है
2. मर्द औरतों के मुकाबले में ज़्यादा मजबूत होते हैं और इसलिए ज़्यादा ज़िम्मेदारी उठाते है और इसलिए भी क्योंकि वो पैसा कमाते हैं
3. और इसलिए, औरतों को फ़रमाबरदार होना चाहिए
4. अगर वह फ़रमाबरदारी नहीं करती है तो वो उसे मार सकता है

क्यूंके वो पैसे ख़र्च करता है इस लिए वो औरतों को कंट्रोल/नियंत्रित करता है और इस लिए औरतें मर्दों की फ़रमाबरदार होती है।

इस आयत में किन लफ़्ज़ों का इस्तेमाल औरतों के ख़िलाफ़ किया गया है?

इस आयत में 5 ज़रूरी अल्फ़ाज़ है:

- दरजा – फायदे की डिग्री / किसी के ऊपर होना
- फजल – एहसन / जिसको बहुत ज़्यादा मिला है
- कव्वामुन – हिफाज़त करनेवाले और ख़र्च पूरा करने वाले / पूरी देखभाल करनेवाले
- क़ानीतात– दिल से फ़रमाबरदारी / श्रद्धालु / अकिदे से भरा
- नुश्ज़ – बेवफ़ाई / बुरा सोचना

इस आयत की ये समझ बनी कि मर्दों का दर्जा औरतों से ऊपर है क्यूंकि अल्लाह ने उन्हें फ़ज़ीलत दी है. वो औरतों की हिफाज़त करेंगे और उनका खर्च पूरा करेंगे और उन पर पूरी मक्तेदारी रखेंगे. औरतें उस के बदले में मर्दों की फर्माबरदार रहेंगी क्यूंकि वो उस की हिफाज़त कर रहा है और खर्च पूरा कर रहा है. अगर वो उस की ना फ़रमानी करती है तो वो उसे मार भी सकता है.

औरतों के ख़िलाफ़ जाने वाली सोच को इतनी शय कैसे मिली?

जैसे वक़्त बितता गया किवामह जैसे लफ़्ज़ों को समझने में गिरावट आती गई। हर आलिम ने यह कोशिश की कि आयत को इस तरह पेश किया जाए जिस की वजह से औरतों के दर्जे में और गिरावट आती जाए।

पुराने आलिमों ने इस आयत को ज़्यादा आगे किया और वो आयतों को पीछे रखा जिस में बराबरी की बात हुई है. मसलन, 30:21 में लिखा है कि अल्लाह आप दोनों के बीच मोहब्बत और रहम दिया है. आयत 2:187 में लिखा है कि वो दोनो एक दुसरे के लिबास है. 7:189 में लिखा है अल्लाह ने इंसान को एक नफ्स से बनाया है और उस में से उस का जोड़ीदार बनाया है ताके वो आपस में मोहब्बत से रह सके.

इस आयत की पिदरशाही समझ क्या है?

अल-तबारी ने कहा कवामूँन का मतलब है मर्द औरत पर हाकिम है। वो उनपर नज़र रखेंगे। औरतों को तरबियत देना / अनुशासित करना ये मर्दों की जिम्मेदारी है। और ऐसा क्यों है, क्योंकि उनके पास औरतों को सपोर्ट करने की ताकत है। इस तरह 'सपोर्ट करना' मर्दों के लिए उनका अपना अधिकार बढ़ाने का तरीक़ा बन गया। वो पैसे देते है इस लिए वो बहतर है और वो बहतर है क्यूंके वो पैसे देते है। इसलिए जो आयत मर्दों की ज़िम्मेदारी बतानेवाली आयत थी, वो आयत अब मर्दों को बड़ा बनाने के लिए इस्तेमाल में लाई गयी।

ज़माखश्री ने एक क़दम आगे बढ़कर कहा, मर्द हुक्मरान है और औरतें उनका हुक्म मान ने वाली। जिस तरह हुक्मरान हुक्म करते है, ऑर्डर करते है, वैसे ही मर्द औरत को ऑर्डर देना चाहिए। मर्द बड़े है सिर्फ़ इस लिए नहीं की वो पैसे कमाते है बल्कि इस लिए भी क्यूंके वो हुशियार/बुद्धिमान है। और इस लिए भी बड़े है क्यूँकि वो घुडसवारी करते है, भाला फेंकतें है, जिहाद, इमामत करते है, अज़ान, खुतबा भी देते है। अल्लाह मर्दों का तरफ़दार है और अल्लाह ने उसे यह ज़िम्मेदारी दी है कि वो औरतों पर हुकूमत करे और उन्हें नियंत्रित करे। हम ने देखा की तबारी ने मर्दों को अनुशासक/तर्बियत्दार बना दिया और ज़माखश्री ने मर्दों को हुक्मरान।

और किसने ऐसी सोच रखी है?

इब्न खतीर ने अबुबकर की हदीस के बारे में कहा है । इस हदीस में कहा गया है कि एक औरत के नेतृत्व/leadership में लोगों की तरक्की नहीं हो सकती। इस हदीस का सहारा लेते हुए इब्न खतीर ने मर्दों को ऊँचा दर्जा दे दिया। उन्होंने यह भी कहा कि औरतों को जज नहीं बनाया जा सकता। इस तरह मर्द पहले घर के बड़े बना दिए गए, फिर समाज के, फिर राजनीति के। उन्होंने किवामाह की इस आयत को सुरह बकर की दर्जा वाली आयत [2:228] से जोड़ दिया। उन्होंने वो सारी हदीसें भी जमा की जहाँ पर यह कहा गया है कि बीवी को शौहर का फ़रमाबरदार होना चाहिए।

और आखिर में मोहम्मद अबदुह ने कहा कि एक औरत फ़ितरतन ताबेदारी में रहने वाली है। यह उस के मिजाज़ में है। औरत सिर्फ़ उस के शरीर से जानी जानी चाहिए। मर्द जैसे सर है और औरत जैसे शरीर। उन्होंने शौहर को बॉस बना दिया और बीवी को उस का हुक्म मानने वाली।

औरत कभी मर्द की बॉस नहीं बन सकती। उन्होंने कहा, 'घर एक छोटे राज्य की तरह है'। वो एक क़दम आगे गए और कहा की घर के काम बहुत क़ुदरती तौर पर औरतों को आते है। इस लिए घर के काम औरतों ने करना चाहिए।
किवामाह के अगले भाग में मैं किवामाह की नारीवादी समझ को देखेंगे।

Reference:

The Interpretive Legacy of Qiwamah as an Exegetical Construct, Omaima Abou-Bakr

क़व्वामूना / किवामह – 2
नारीवादी नज़रिए से इसे समझना

पुराने आलिमों की सोच को कैसे और किसने चुनौती दी?

कई आलिमाओं ने कुरान के इखलाकी ढाँचे को ध्यान में रखते हुए किवामाह को फिर से समझा।

आयशा तैमूर बताती हैं कि किवामाह की आयत लापरवाह शौहरों को फटकारती है जो अपने परिवार की तरफ़ अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा नहीं करते। इसलिए अगर मर्द अपना काम नहीं करते हैं तो वो अपने हालात कमज़ोर कर देते है। वो कहती हैं, पैसे घर में लाना यह उसके बड़कपन की शर्त है, बड़कपन की वजह नहीं। अगर बड़े बने रहना है तो अपना काम ठीक से करना ज़रूरी है।

असमाँ बरलास का कहना है कि भले ही कुरान चाहता है कि आदमी पैसे कमाए, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसे घर के मुखिया में बदल दे।

खालिद अबू अल-फदल का कहना है कि अगर आदमी परिवार को नहीं सम्भाल रहा है तो वो क़व्वाम नहीं है। और अगर एक औरत परिवार का सम्भालती है तो वो भी क़व्वाम है। और दोनो मिलकर घर चलाते है तो दोनो क़व्वाम है। अगर औरत सपोर्ट कर रही है या वह एक बराबर की भागीदार है, तो दोनों मिलकर घर चला रहे है। सिर्फ़ मर्द ही क़व्वाम बना रहे ऐसा ज़रूरी नहीं है।

अमीना वदूद कहती है कि हमें क़ुरान के उस पार भी जाने की ज़रूरत है जहाँ क़ुरान का इशारा है। मुश्किल आयतों के साथ झुँझने के बजाए यह देखने की ज़रूरत है कि क़ुरान सभी इंसानियत को कहाँ ले जाना चाहता है। कुरान बेहतरी की तरफ़ जाने की बात करता है, एक रास्ता दिखाता है, एक दरवाज़े की तरह है, एक निशानी है। क़ुरान का मक़सद है कि जो दिया गया है, हम उससे आगे बढ़ें। हम एक ऐसे वक़्त में रह रहे है जहाँ क़ुरान

आ चुका है और वही नाज़िल हो चुकी है। क़ुरान वो किताब है जो तारीक/इतिहास में जड़ी है और आगे की बहतरी के लिए संदेश देती है, इशारा करती है।

केसीआ अली का कहना है कि कुरान खुद ही चाहता है कि हम इसके शब्दों के आगे जाए और उस में दिए क़वाइद / rules को हमारे तरक़्क़ी की शुरुआत समझे उसका खातमा नहीं। कुरान का संदेश रूहानी है और उसे हमें इस दुनिया में रहकर समझना है। अल्लाह की दुनिया अलग है और इंसानो की अलग। अल्लाह से आया हुआ संदेश एक दायरे में है और इंसान दूसरे दायरे में। ऊपर से आते आते, अल्लाह का संदेश अपनी कुछ रूहानियत खो देता है। दुनिया के नियम इस रूहानी संदेश को पूरी तरह से पकड़ नहीं पाते है। शब्द कम पड़ जाते है।

कुरान में किवामा कहीं और कैसे इस्तेमाल किया गया है?

कव्वामुन क़व्वाम का बहुवचन/plural है जो मूल शब्द 'कमाँ' से आता है जिसके 30 अलग-अलग मायने हैं। उठना, पालन करना, ले जाना, आगे बढ़ना, विद्रोह करना, सहना और ऊपर उठाना। आयत नम्बर 4:135 और 5:8 में किवामाह का इस्तेमाल बताया गया है जो अवामी है, घर के दायरे के बाहर.

आयत - 4:135

ऐ मानने वालों, इंसाफ़ के लिए खड़े रहो [क़व्वामीन] और अल्लाह को गवाही दो। अल्लाह के साक्षी बनो। चाहे वो अपने ख़िलाफ़ ही क्यूँ ना हो, चाहे वो अपने माँ-बाप के ख़िलाफ़ क्यूँ ना हो, चाहे वो अपने रिश्तेदारों के ख़िलाफ़ क्यूँ ना हो, चाहे वो अमीर या ग़रीब के ख़िलाफ़ क्यूँ ना हो। अपने दिल की मानो। और अगर आप नाइंसाफ़ी करते हो तो अल्लाह सब जानता है।

आयात 5 : 8

ऐ मानने वालों! सच और इंसाफ़ भरे सौदे में अल्लाह की तरफ़ से मजबूती से खड़े रहो [क़व्वामीन] और गवाह बनो। दूसरों से नफ़रत ना करो और उस नफ़रत की वजह से ऐसा ना हो की आप नाइंसाफ़ी कर बैठो। और इंसाफ़ के रास्ते से भटक जाओ। इंसाफ़ करों, सही रास्ते पे चलो और अल्लाह से डरो। अल्लाह सब जानता है जो आप कर रहे हो।

इसलिए किवामाह के दो प्रकार हैं - निजी आयाम और अवामी/सार्वजनिक आयाम?

ये दोनों आयातों में औरत और मर्द को कहा गया है कि वो अपने हर काम में, फ़ैसलों में, सचाई और इंसाफ़ का साथ दे और निस्पक्ष रहे [ग़ैर-जानिबदार]। इंसाफ़ करने के लिए मज़बूत बनो, कठोर बनो। और बहुत बारीकी से, ऐन मुताबिक़ अपनी गवाही दो।
दोनो ही आयतों में इंसाफ़ और सचाई के उसूलों पर मज़बूत ज़ोर दिया गया है। अपने या अपने रिश्तेदारों, अमीर या गरीब या यहां तक कि एक दुश्मन के मामलों में भी इंसाफ़ और सचाई बरतनी है।

इस से क्या मतलब निकाला जा सकता है?

इस का मतलब यह है कि किवामाह का सिर्फ एक मतलब नहीं है. इस का मतलब सिर्फ 'खर्च करना और हिफाज़त करना' नहीं हो सकता. इस का

ये भी मतलब है कि इन्साफ करो, किस्त रहो और गैर-जानिबदार रहो. किवामाह के इस मतलब को नज़र अंदाज़ किया गया है ताके सिर्फ एक ही मायने, पिदरशाही मायने को अहमियत मिले.

तो आखिर में इस आयत की नारीवादी समझ क्या होगी?

मर्द औरतों और परिवार के समर्थक हैं, सपोर्टर है। क्योंकि वो अक्सर पैसे लाने के लिए ज़िम्मेदार होते है। अल्लाह कभी एक को तो कभी दूसरे को नवाज़ता है। किवामाह एक कर्तव्य/duty और ज़िम्मेदारी है ताकि मर्द पैसे लाएं और औरत परिवार को सम्भाले। दोनों वो ही कर रहे हैं जिसके लिए वो क़ाबिल हैं। मर्द क़व्वाम इसलिए है क्यूँ के उनके पास कमाने की समाजी काबिलियत/क्षमता है। तब भी और अब भी, औरतों के पास भी कमाने की काबिलियत है, इस लिए वो भी क़व्वाम है।

इसलिए संक्षिप्त में?

• मर्द किवामाह को घर तक ही महदूद रखना चाहिए
• मर्द किवामाह है क्यूंके वो पैसे लाते है
• अगर मर्द पैसा नहीं लाते है और औरत पैसे लाती है तो औरत किवामाह है
• अगर औरतें और मर्द दोनों पैसे लेकर आते हैं तो घर में दो किवामाह है
• अगर औरतें पैसे नहीं लाती हैं, तो भी उनके घर में हो रहे

काम को काम समझा जाएगा और इस काम का पैसों में मोल है। हर housewife सच में तो किवामाह है क्यूँकि वो घर में बिनपगारी काम करती है।

• पुरुष पैसे लाता है और औरत घर का काम करती है तो दोनो बराबर हो गए और दोनो क़व्वाम है

• ऐसे मिसालों में, जहाँ औरतें घर में काम करती हैं और साथ ही बाहर पैसा कमाती हैं, तर्क से उनकी किवामाह पुरुषों के मुक़ाबले ज़्यादा है।

तब तो औरतें भी कीवामाह है?

जो औरतें घर चलाती है, वे अपनी महनत की वजह से किवामाह होती हैं। इसके अलावा, वे सभी औरतें जो बाहर काम करती हैं, वे डबल किवामा हैं और जो औरतें सिर्फ बाहर काम करती हैं, वे वैसे भी किवामाह हैं। इस का मतलब है कि औरतों का एक बड़ा तबक़ा अपनी और अपने परिवार की ज़िम्मेदारी लेते है, सपोर्ट करते है, पैसे कमाते है और हिफाज़त भी करते है।

अब असली किवामाह कौन है यह आप सोच सकते है!!

Reference:

Interpretive Legacy of Qiwamah as an Exegetical Construct, Omaima Abou-Bakr

An Egalitarian Reading of the Concepts of Khilafah, Wilayah and Qiwamah, Asma Lambrabet

रोज़ा : खाने-पीने से दूर रहने से कई ज़्यादा

रमज़ान का मतलब, खाना और पानी से परहेज़, क्या यह रमज़ान की खासियत है?

हाँ, यह है। रमज़ान कई चीजों का एक ज़रिया है। ये बहुत चमत्कारी तरीक़े से दिमाग़ के ज़रिए जिस्म को कंट्रोल करने का एक तरीक़ा है। सामान्य दिनों में, हम अपने हाथों को खाने से दूर नहीं रख सकते। लेकिन रोज़े में अचानक कंट्रोल की ताक़त आ जाती है। इसका एक मनोवैज्ञानिक/नफ़सियाती पहलू भी है। जिस्मानी तौर पर, यह जिस्म पर इख़्तियार लाने में मदद करता है। हम लगभग 14-16 घंटे खाना और पानी से दूर रहते है। रोज़े का एक समाजी पहलू भी है। यह उन सभी के लिए हमदर्दी के जज़्बे को तयार करता है जिनके पास उन 14-16 घंटों के आख़िर में पेटभर मनपसंद खाना खाने का ज़रिया नहीं है। इसलिए, खाना और पानी से दूर रहने के एक आसान तरीक़े से कितने और पहलू पर असर होता है।

शाम के समय जिस तरह से लोग इफ्तारी की नुमाइश करते है इस से यह समझता है कि यह सिर्फ कुछ घंटों के लिए कंट्रोल करने का एक तरीक़ा है, इसलिए क्या यह सब सिर्फ़ खाने के बारे में ही तो नहीं है?

अफ़सोस के ये बात सच है। रमज़ान के रोज़े खाने के त्योहार में बदल गए है। यह ज़रूर कुछ घंटों के लिए खाना/पानी से दूर रहने के बारे में है, शाम को पेटभर खाने के बारे में नहीं है। लेकिन ऐसा लगता है कि यह ऐसा ही होता है। जो दिन के रोज़े में कमाते है वो शाम के इफ़्तार और उस के बाद खो देते है। दिन रात में बदल जाते हैं और रात दिन में। कम से कम मुंबई के कुछ हिस्सों में ये तजुर्बा हुआ है। बच्चे और युवा रात भर जागते रहते हैं तरावीह की नमाज़ के बाद, खेल खेलते हैं, बाते करते हैं, खाते हैं और सेहरी कर के ही सोते है। दिन के 1-2 बजे तक सोते हैं। जो बच्चे सुबह स्कूल में जाते उनकी नींद पूरी नहीं होती है. औरतें अपनी दोपहर इफ़्तार की तयारी में लगा देतीं हैं और शाम सेहरी की तयारी में। मन की सफ़ाई और रूहानी ताक़त बढ़ाने का वक़्त कहाँ है।

इस पाक महीने को सही तरह से गुज़ारने में हम कहाँ कम पड़ गए है?

जब हम खाना पीना बंद कर देते है तब क़ुदरती तौर पर शरीर सुस्त और चूप हो जाता है। यह अगला खाना मिलने तक, जो ताक़त है उसे बचाए रखता है। और यह वो वक़्त होता है जब हमें शरीर से हटकर अपने मन और रूह तक जाने की

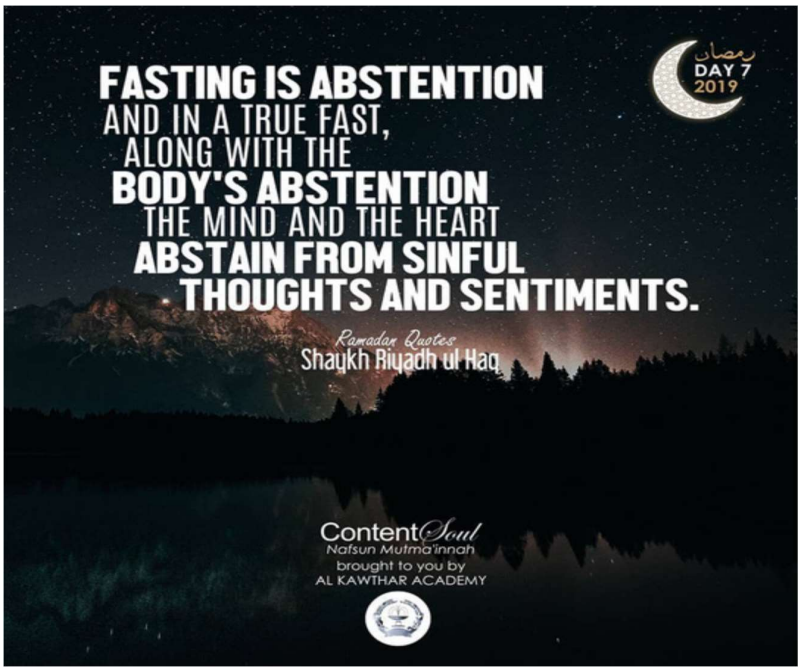

कोशिश करनी चाहिए। शरीर संजीदा तरीक़े से तकलीफ़ों से गुज़रता है और कंट्रोल लाता है ताके मन को भी कंट्रोल लाने की आदत हो जाए। जैसे-जैसे हम जिस्म से मन और रूह की ओर बढ़ते हैं, हमें खुद से सवाल पूछने चाहिए। मैं यहाँ क्यों हूं, क्या मैं एक इंसान के रूप में इस ज़िन्दगी के सफ़र में अच्छा कर रही हूं, क्या मैं बेहतर हो रही हूं, क्या मैं एक अच्छी इंसान हूं, मैं कहाँ गलत हो रही हूं, क्या मैं किसी को नुकसान पहुंचा रही हूं, क्या मैं संगदिल हूं, क्या मैं अल्लाह के बताए रास्ते पे चल रही हूँ, क्या मैं इंसाफ़ कर रही हूँ, क्या मैं दयालु हूं - इन और कई और सवालों को उठाया जाना चाहिए। खाना नहीं खाने से शरीर की सफ़ाई होती है और ऐसे सवाल पूछने से मन और रूह की सफ़ाई होती है।

रोज़े की रूहानी अहमियत क्या है?

रोज़े हमारे लिए यह जानने का एक तरीका है कि हमारा वजूद सिर्फ़ जिस्मानी नहीं हैं, जिसे सिर्फ़ खाना और पानी चाहिए। हमारी एक रूहानी शकसियत भी है जो अल्लाह की रोशनी को जानती और समझती है और उस रोशनी के तहत अपनी ज़िंदगी बिताने के क़ाबिल है। हम एक रूह है जिसने एक जिस्म का चोला पहना है। ना की एक जिस्म जिस के अंदर एक रूह है। रोज़ा एक ज़रिया और मौक़ा है अपने अल्लाह के क़रीब आने का। गैर-रमज़ान के दिनों में भी जब हम ५ वक़्त की नमाज़ पढ़ते है तब भी यही कोशिश होनी चाहिए की दिन में ५ बार हम अपनी अंदर की रूह को अल्लाह के सामने खड़ा करें। और हक़ीक़त में तो हर लम्हा हमें इसी रूहानी जज़्बे के साथ बिताना चाहिए। बेशक, यह आसान काम नहीं कहा। और 5 बार नमाज़ इस लिए पाबंद हुई ताकि हम दिन में कम से कम ५ बार तो अपनी रूह से रूबरू हो सके। और यह समझे की हम वो पाक रूह है जिसके इर्द गिर्द एक जिस्म है। रमज़ान एक महीने भर का मौक़ा है अपने अंदर की रूहानी ताक़त से मिलने और उसे समझने का।

इस महीने में लोग कुरान क्यों पढ़ते हैं?

कुरान अल्लाह के अलफ़ाज़ है और अल्लाह इस पूरे कायनात की रूह है। इसलिए जब हम कुरान पढ़ते हैं तो हम अल्लाह से बात करते है। यह हिदायत की एक किताब है, जो आप को रास्ता दिखाती आप जहाँ कही भी खड़े है अपनी ज़िंदगी में। इस महीने में कुरान का नाज़िल होना शुरू हुआ था। और इस लिए दुनिया भर के मुसलमानो के लिए रमज़ान की एक बड़ी रूहानी और मज़हबी अहमियत है। कहने की जरूरत नहीं है कि कुरान एक हिदायत की किताब है जिसे ऐसी भाषा में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें से हर एक को हिदायत मिल सके। इसे उस भाषा में पढ़ने का कोई मतलब नहीं है जिसे हम नहीं समझते है । अगर हम क़ुरान को समझ के पढेंगे तब हमें अपने दिमाग़ और अक़्ल का इस्तेमाल करना पडेगा। पढ़ने के बाद हम उस संदेश को

अपनी ज़िंदगी के साथ जोड़ने की कोशिश करेंगे। अल्लाह के इस बयान का असर हमारी रोज़ की ज़िंदगी पर कैसे हो सकता है, यह सोचने लगेंगे। हम आज क़ुरान से क्या सीख सकते है जिस से हम एक बहतर इंसान बन सकें और एक बहतर ज़िंदगी बिता सकें?

लेकिन साल में सिर्फ एक बार ऐसा सोचने से क्या होगा? क्या यह हमारे रोज़ की ज़िंदगी की सोच नहीं होनी चाहिए?

एक महीने तक अगर ऐसा करते रहेंगे तो मन की तयारी हो जाती है। इस एक महीने में सवाल पूछने की और जवाब धूँढने का वक़्त मिलता है। ज़िंदगी थोड़ी रुक सी जाती है और ज़िंदगी में अगर बदलाव की ज़रूरत महसूस होती है तो उसका मौक़ा मिलता है। जिस्मानी, नफसियाती, जज़्बाती और रूहानी सतह पर अपने आप को ख़ाली करने का वक़्त मिलता है ताके हम अपने अंदर की रूहानियत को गहराई से समझ सके। वक़्त मिलता यह समझ ने के लिए की आप और आप के आसपास की हर शय उसी रूह का हिस्सा है जिसमें प्यार और तालमेल है। और यह भी समझने का वक़्त मिलता कि हम तौहीद को कैसे अपनी ज़िंदगी में उतार सकते है। यह समझें कि हम सब एक है, हम सब एक ही रूहानियत का हिस्सा है। हम अलग है लेकिन कहीं जाके हम सब एक है। अगर ईमानदारी से एक महीने के लिए ये किया जाता है, तो इस का असर एक बहतर इंसान बन ने में काफ़ी दिनो तक मदद करता है। और साल-दर-साल यह करते रहने से, हम बहतरी की ओर बढ़ते जाते है।

रमज़ान का माआशी असर कैसे होता है?

रमज़ान का असर इंसान के मन, जिस्म और रूह पर होना चाहिए। यही मक़सद है। लेकिन, पहले से ही रमज़ान का आर्थिक या माआशी पहलू भी रहा है। आज के ज़माने में, सब पहलू की तरह इस महीने का भी व्यवसाईकरण/तिजारती हो गया है। शॉपिंग मॉल भरे होने के साथ साथ, रात भर चलने वाले खाने पीने के स्टॉल – इन सब की वजह से एक पूरे तबके को आमदनी का ज़रिया मिलता है। उन्हें मौक़ा मिलता है कुछ पैसे कमाने का। रमज़ान के इस मआशी पहलू को हम नज़रंदाज नहीं कर सकते है। यह उन लोगों के लिए बहुत मायने रखता है जो इस महीने पर अपनी मआशी बहतरी के लिए निर्भर/मुनहसर हैं। इससे मआशी निजाम में भी तेज़ी आती है और पैसे का बहाव बना रहता है। रोज़ों के बाद ईद होती है जिस की वजह से कई लोगों को कमाने का मौक़ा मिलता है।

रोज़े की वजह से क्या अपने स्वभाव/बर्ताव में फ़र्क़ पड़ता है?

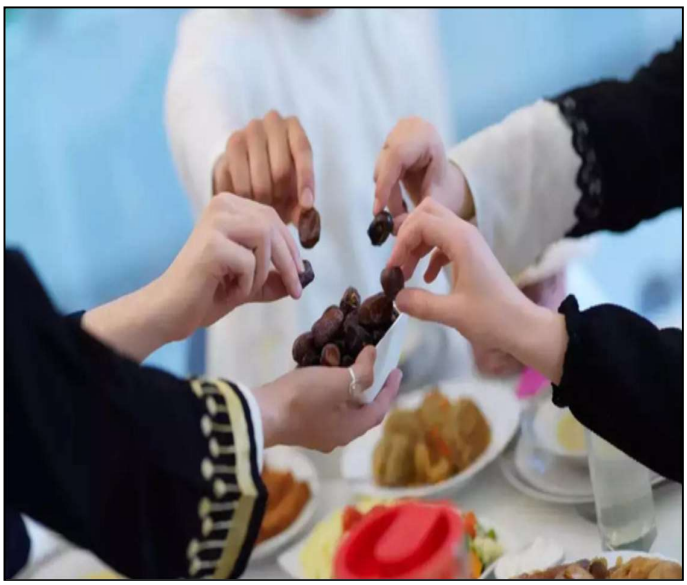

जैसा की पहले कहा गया है, रमज़ान सिर्फ खाने पीने से दूर रहने के बारे में नहीं है । इस महीने में वो सब नहीं करना है जो ग़लत है। इसके अलावा अगर आप सच में कुरान को इसके मायने के साथ पढ़ते हैं, इसकी हिदायतों पर सोच विचार करते है, अगर आप अपने अंदर जाते हैं और अपनी ज़िंदगी को जाँचते है और उसे बहतर बनाते है, तो झगड़े, जलन-हसद, ग़ुस्सा, उदासी की बहुत कम गुंजाइश होती है। बुरे ख्यालों, कामों और अल्फाजों से दूर रहने की ताक़त भी मिलती है। यह दूसरों को

कंट्रोल करने से ज़्यादा, ख़ुद को कंट्रोल करने का एक मौक़ा है। दुश्मनी, झगड़े और ग़ुस्से से दूर होने के लिए यह एक अच्छा मौक़ा है। सिर्फ़ खाने से दूर नहीं तो हर सुख से दूर रहना ज़रूरी है ताके हम अपने मन की गहराई में जा सके और बाहरी दुनिया में उलझ नहीं जाए। यह बहुत आसान और ऑटमैटिक नहीं है। ख़ुद को इसके लिए तयार करना पड़ता है और यह अंदरूनी बदलाव का फ़ैसला लेना पड़ता है। बशर्ते हम रमज़ान की इस गहरी समझ को जानें और क़ुबूल करें।

क्या आप हदीस से कोई मिसाल दे सकते हैं?

अपने यू-ट्यूब चैनल में खालिद अबू फदल ने अनस की हदीस बताई है - रमज़ान के दौरान रोज़े रखने से एक बेहतर इंसान बनने का मौक़ा मिलता है। कुछ अच्छी आदतें डालने का मौक़ा मिलता है, जैसे, गीला गिबत नहीं करना, झूट नहीं बोलना, पीठ पीछे बुराई नहीं करना, झूटी क़सम नहीं खाना, अपने ज़ात से किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाना। यह मौक़ा है इस्लाम के इखलाकी ढांचे को अपनाना और एक अच्छे इंसान बनने के रास्ते पर चलना।

हमें पूरे साल एक अच्छा इंसान होना चाहिए और रमज़ान में इसकी अच्छी ट्रेनिंग मिल जाती है ताके हम अपनी रूहानियत बनाए रखे, अच्छाई में भरोसा रखे, इंसाफ़पसंद बने ख़ुद और दूसरों की तरफ़ बुरी नियत और बुरे काम से दूर रहे।

Ref : Meaning of Fasting, Khaled Abou Fadl, You Tube

इस्लाम में रूह के मायने

इस्लाम में रूह/आत्मा की आम समझ क्या है?

आत्मा या रूह ज़िंदगी है। यह वह है जो इंसान की पूरी शकसियत/पहचान में जान डालती है। जब बच्ची माँ के पेट में जन्मती है तब उस में रूह फूँकी जाती है। और मरने के वक़्त इस रूह को जिस्म से निकाला जाता है और जिस्म बेजान हो जाता है। रूह अल्लाह ने बनाया है और जिस्म अल्लाह ने बनाया है और जो उसका है वो उसे अपने पास ले लेता है मरने के वक़्त।

इस्लामिक आलिमों ने रूह को कैसे समझा है?

इस्लामी आलिमों ने रूह, नफ्स और अक्ल के बीच के फ़र्क़ को समझा हैं। रूह आत्मा है, नफ्स इंसानी शऊर/चेतना है और अक्ल सोचने समझने की सलाहियात है।

रूह अल्लाह से आती है। अल्लाह ने रूह को ऊर्जा/एनर्जी/तवानायी की तरह बनाया है। और इस ऊर्जा को इंसानी जिस्म में डाला ताके हमें ज़िंदगी मिले। रूह अल्लाह से आती है और उस पर निर्भर/मुनहसर है। इसका मतलब यह भी है कि हर इंसान रूहानी हैं। हर इंसान में अल्लाह की रोशनी है। रूह हर इंसान में उस रोशनी के तरह है जो सारे कमरे को रोशनदार बना देती है। रूह में रोशनी अल्लाह की रोशनी है। इंसानी जिस्म एक कमरे की तरह है और रूह उस रोशनी के तरह है जो रोशनी फैलाती है। ग़ज़ाली कहती है, रूह अल्लाह की ख़ूबसूरती से आई हुए रोशनी है। दुनिया अंधेरे में है और अल्लाह की रोशनी उसे उजाला देती है। हम सब इसी रोशनी का हिस्सा है। और यही रोशनी हमारे अंदर है।

रूह का नफ़्स और अक़्ल से कैसे जुड़ाव है?

रूह, अक्ल और नफ़्स से जुड़ी हुई है। लेकिन अक्ल और नफ़्स के साथ जो होता है उस का असर रूह पर नहीं होता है। । जिस्म और मन में जो हो रहा है उस से रूह की ताक़त कम नहीं होती।

नफ्स क्या है?

नफ्स इंसानी चेतना है जो शरीर और मन में बसी है। गज़ाली के मुताबिक़ नफ्स ३ यह ३ प्रकार की है:

1. नफ़्स कभी कमज़ोर पड़ती है, समझौता करती है, कभी कभी ग़लत काम करवाती है
2. ज़मीर, यह एक ऊँची समझ है जो फ़ैसलों पर सवाल उठाती है, तालमेल बनाए रखती है
3. सुकून – अगर तालमेल और बैलेन्स हो जाता है तो सुकून का अहसास होता है

हर वक़्त हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि हम नफ़्स को रूह के नज़दीक ले जाए

हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में इस का क्या मतलब है?

इंसान होने के नाते हमारे अंदर हम ग़ुस्सा, उदासी, शर्म, अहसास-इ-जुर्म महसूस करते है। हम कई बार गुस्सालू, घमंडी, बेहिस और बेरहम हो जाते हैं। कई बार हम आलसी होते हैं, बिना किसी मक़सद के ज़िंदगी गुज़ारते है। कभी कभी हम मज़लूम/पीड़ितों की तरह महसूस करते हैं, हम ज़िंदगी की नाइंसाफ़ी को महसूस करते हैं और सहन करते हैं। और यह जद्दोजहद ज़िंदगी भर चलती रहती है। लेकिन इसी जद्दोजहद में हम ख़ुशी और इत्मिनान भी महसूस करते है। हम खुद को इतने सारे मुश्किल मुद्दों से दूर होने देते हैं। हम शुक्रगुज़ार को जाते है, अच्छा सोचने लगते है, सकारात्मक और बेहतरी की तरफ़ देखने लगते है। हम कई बार मुश्किल फ़ैसले भी ले लेते है, ज़िंदगी को नया मोड़ दे देते है, ज़िंदगी का मक़सद तय कर लेते है। और धीरे धीरे एक संतुलन/बैलेन्स लाने की कोशिश करते है। और जब हम यह संतुलन/तालमेल/बैलेन्स ले आते है तब हमें लगता है कि हम अपनी रूह के नज़दीक हो गए है।

कहना आसान है करना मुश्किल? कैसे करें?

हमारी अक़्ल हमें मदद करती है इसे करने में। दिमाग़ लगाना, सोचना, तर्क करना यह ज़रूरी है। हमेशा अक़्ल से काम लेना चाहिए। सवाल पूछना चाहिए और जानकारी लेनी और देनी चाहिए। सिर्फ़ जज़्बात से काम लेना नहीं चाहिए। जज़्बात में हम बहुत बार अक़्ल खो देते है। अक़्ल के ज़रिए हम नफ्स पर क़ाबू पा सकते है और उसे रूह के नज़दीक ले जा सकते है। चेतन मन, बाशऊर दिमाग और चुन ने ताक़त हर इंसान में है। मन, जिस्म और रूह में तालमेल ज़रूरी है।

क्या आप एक मिसाल दे सकते हैं?

रूह, एक गाइड की तरह है जिसकी हमेशा यह कोशिश होती है की आप उस की तरफ़ बढ़ते जाए और अपनी रूहानियत को समझे। अक़्ल उस ड्राइवर की तरह जो उस गाइड से बार बार रास्ता पूछते रहता है। और नफ्स वो गाड़ी है जिसे अक़्ल और रूह मिलकर चलाते है।

यह हमारी ज़िंदगी पर कैसे असर करता है?

अगर हम अपनी रूह की पाकिज़गी को अपना लें जिस में सब कुछ अच्छा है, ख़ूबसूरत है, जिस में प्यार और करुणा है, तो हम उस ख़ूबसूरती को हासिल करने के लिए कोशिश करेंगे। और सब से पहले, ख़ुद से मोहब्बत करेंगे। ख़ुद की पाकिज़गी और रूहानियत को पहचानेंगे और क़ुबूल करेंगे। ख़ुद से प्यार करेंगे तो दूसरों को भी प्यार कर पाएँगे। और सिर्फ़ इंसानो से मोहब्बत नहीं तो हर शय से मोहब्बत करेंगे। ख़ुद की पाकिज़गी को अल्लाह की पाकिज़गी का हिस्सा समझेंगे। और हर शय को अल्लाह की रूहानियत और पाकिज़गी का हिस्सा समझेंगे। क्या हम अपनी और दूसरों की भलाई कर रहे है? क्या हम इस कायनात को बनाए रख रहे या इसे बर्बाद कर रहे है? इस तरह के सवाल हमें अपने आप से पूछना चाहिए।

पैगंबर के ज़िंदगी में इस का अक्स दिखता है?

उनकी यही कोशिश रही के अपने कामों और बातों से हमें यह समझा सके कि हम सच में कौन है। अल्लाह रहम और करम करनेवाला है और हमारी रूह इस रहम और करम की भागीदार है। और अगर अल्लाह रहम और करम करनेवाला दयालु है तो क्या हम, जिस के अंदर उस की भेजी हुई रूह है, कुछ और हो सकते है?

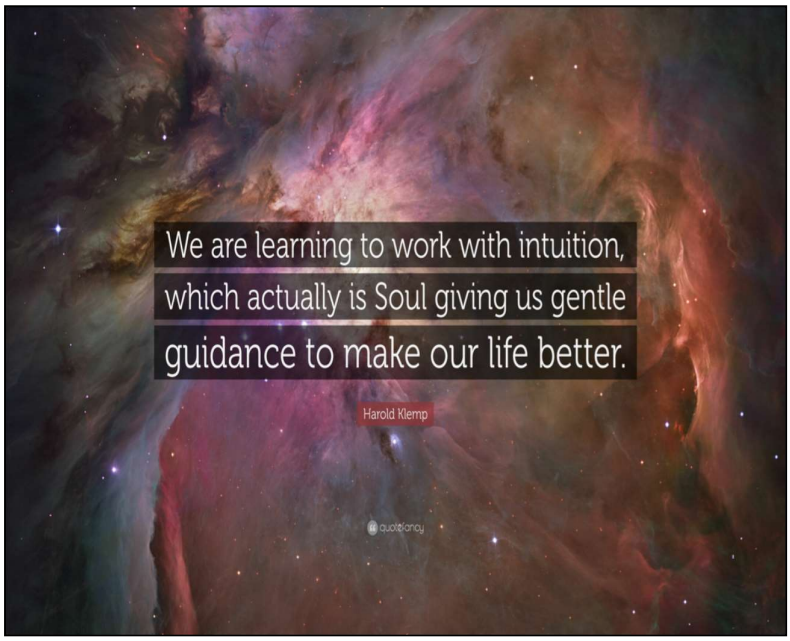

Reference: Khaled Abou Fadl, Soul in Islamic Theology, You Tube

इस्लाम की महिला विद्वान और संत

अगर कोई इस्लाम के दक़ियानूसी लेख पढ़े तो ऐसा लगे की मुस्लिम महिला हमेशा से पीड़ित और पिछड़ी हुई रही है। जो 'सही इस्लाम' जान ने का दावा करते है उन का बड़ा हाथ रहा है इस्लाम की ऐसी तस्वीर बनाने में। ऐसों लोगों ने इस्लाम का बहुत बड़ा नुक़सान किया है। लेकिन जब हम एक नारीवादी चश्मा लगाके इतिहास को देखे तो हमें बहुत ख़ुशी और फ़ख़्र महसूस होगा। नीचे कुछ ऐसी ही औरतों की कहानियां है जो आज तक हमें हौसला देतीं है और यह उम्मीद दिलातीं हैं कि एक मोतबादिल/वैकल्पिक लेख लिखा जा सकता है जिस में औरत का उमदा मक़ाम हो.

सईदा नफीसा

वह इस्लाम के विद्वान/आलिमा थीं, उस्ताद थीं और पैगंबर मोहम्मद के शिजरे से हैं। वह इमाम शाफी की उस्ताद रहीं है, जो शाफ़ी फ़िरक़े के बनाने वाले है। सईदा नफ़ीसा ने इमाम शाफ़ी के वसीहत के मुताबिक़,

उनका नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ा था। उन्होंने कुरान को गहराई से समझा था और गहराई से इस्लामी न्यायशास्त्र/कानूनी निज़ाम को पढ़ा था। वह बेहद ज़हीन थी। वह एक सन्यासी थी और दिनों तक बिना खाने के रहती थीं। कई चमत्कार भी उन्होंने किए थे। उन्हें कई शीर्षक मिले थे, जैसे, 'इल्म की नायाब महिला', फ़तवे और क़ानून बनानेवाली महिला' 'Rare Woman of Knowledge', 'Leading Woman in Deriving Fatwas and Rulings'

फातिमा फुदैलिया

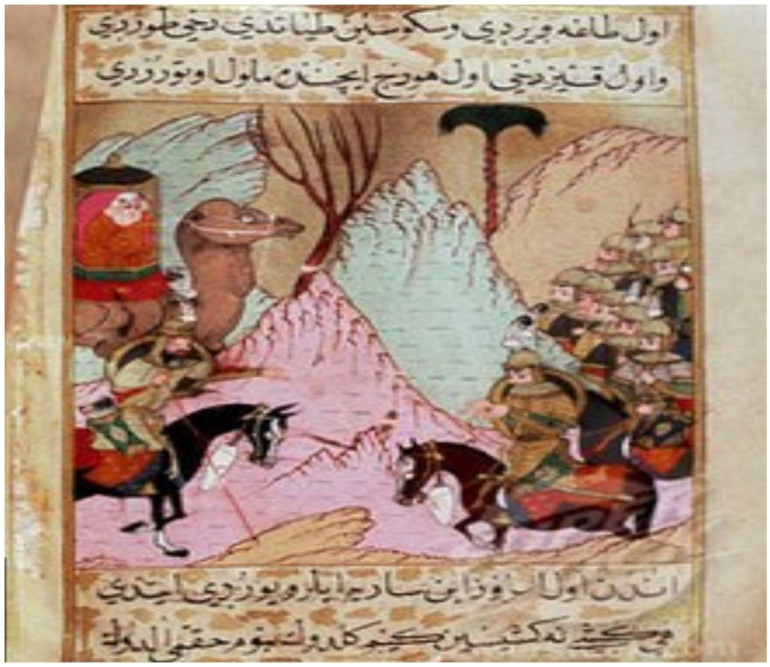

18वीं सदी की वो एक न्यायविद थीं और हदीस की विद्वान थीं। वह उसूल, फ़िक्ह और तफसीर की एक्स्पर्ट/विशेषज्ञ भी थी। कई मुहुद्दिदों (हदीस के बतानेवालों) को उन्होंने सर्टिफ़िकेट भी दिया था। वह एक सुलेखक [कलिग्रफ़र] भी थीं और मक्का में एक लाइब्रेरी/पुस्तकालय की स्थापना की थी।

फखरुन्निसा शुहदा अबू नसर

वह 10वीं सदी की आलिमा, मुहद्दिद (हदीस की ट्रांसमीटर / व्याख्याकार) और सुलेखक थी। उन्हें 'शुहदा बगदादिया' (बग़दाद के लेखक) का उपाधी/लक़ब भी मिला था. वह इतना अच्छा पढ़ाती थी कि अगर उनके साथ एक सेशन/सत्र की इजाज़त मिल जाए तो वो बहुत फ़ख़्र की बात होती थी। उन्होंने तारिक/इतिहास, लिंग्विस्ट्स/भाषा विज्ञान और अदब/साहित्य पर भाषण दिए। वह अपने इल्मियत/erudition, सुलेख

कला और भाषण के लिए जानी जाती थीं। यह माना जाता है कि हजारों स्टूडेंट्स, मुआज़्ज़िज/गणमान्य लोग और आलिम उनके जनाज़े में शामिल हुए थे।

अल-शिफा बिन अब्दुल्ला

7वीं शताब्दी की एक और महिला आलिम!! वह पैगंबर मोहम्मद की साथी थीं। उन्हें एक ज़हीन महिला माना जाता था। उन्हें 'शिफा' कहा जाता था क्योंकि उन्होंने ने अवामी सेहत/folk medicine की पढ़ाई की थी। उस समय मुश्किल से 20 लोग पढ़ना और लिखना जानते थे और उन में से वो एक महिला थी। उन्होंने सुलेख भी सिखाया। पैगंबर मोहम्मद और खलीफा उमर को वो तिज़ारत के मामलों में सलाह भी देती थी।

सुग़रा अल दरदा सुग़रा 7वीं शताब्दी की कानूनी जानकार और आलिमा थीं जो दमसकस में रहती थी। वो इस्लामिक क़ानून और धर्मशास्त्र पढ़ाती थीं। उन का कहना था कि आलिमों के साथ बैठकर बहस करना अल्लाह की इबादत करने का सबसे अच्छा तरीका है! उन्होंने एक फतवा जारी किया जिसमें औरतें उस तरह नमाज़ पढ़ सकतीं है जिस तरह मर्द पढ़ते है। बहरैन में, औरतों के लिए क़ुरान, हिफ़्ज़ और तजवीद सिखाने का एक सेंटर उनके नाम पर है।

बीबी हाजरा

जब हम ईद उज़्ज़ुहा मनाते है तब हमें बीबी हाजरा को याद करना चाहिए। इब्राहिम, उनके शौहर ने उनको भयानक रेगिस्तान में बेटे इस्माइल के साथ अकेला छोड़ दिया था। बीबी हाजरा ने हार नहीं मानी। और ना ही रोना धोना किया। वो सफा और मरवा के पहाड़ों के बीच भागती रही ताके पहाड़ के टीले से उन्हें कोई कारवाँ नज़र आए जो उन्हें और उनके बच्चे को बचा सके। आज यही सफा मरवा के बीच की दौड़ लोग हज के वक़्त लगाते है। उनकी

मदद जिबरईल ने की और बच्चे की एढ़ियों से पानी निकला जिसे हम ज़मज़म का पानी कहते है। बीबी हाजरा ने एक क़ाबिले को पानी देकर उनकी मदद की और इस तरह मक्का शहर बस गया।

हज़रत हाजरा, मजबूत, पक्के इरादों वाली, सकारात्मक, कभी हार ना मान ने वाली महिला थी। वो ज़मज़म के लिए ज़िम्मेदार है, वो हज में हो रहे सफा-मरवा के लिए ज़िम्मेदार है, वो मक्का शहर बसाने के लिए ज़िम्मेदार है जिसमें १४०० सालों से लाखों लोग हज करने जाते है और उन की वजह से एक तहज़ीब की शुरुआत हुई।

हज़रत आयशा

हम मुस्लिम नारीवादी महिलाओं के लिए हज़रत आइशा एक मिसाल हैं; ज़हीन और बहादुर!! उन के पास 1200 हदीस थी, जिस को लेकर पुरुष ख़लीफ़ा भी उन से सलाह लेते थे। पैगंबर मोहम्मद ने कहा है कि आइशा से इस्लाम के बारे में आधा इल्म लें। पैग़म्बर की मौत के बाद आएशा ने एक अहम सियासी किरदार निभाया था। उन्होंने ने एक जंग का नेतृत्व भी किया था। वो पैग़म्बर के साथ कई जंगो में भी शामिल हुई थी। जंग के पहले की बातचीत में भी वो शामिल रहती थीं।

उममे सलमा

सवाल पूछना यह हमें उम्मे सलमा से विरासत में मिला है। वो पैगंबर मोहम्मद की पत्नी थीं। सिर्फ़ उनकी वजह से क़ुरान की एक आयत नाज़िल हुई है। यह आयत औरत और मर्द की समानता को बरक़रार करती है। उम्मे सलमा ने एक दिन पैगंबर से पूछा, कुरान में पुरुषों से ही अल्लाह क्यूँ बात करता है, औरतों से क्यूँ नही? इस सवाल के बाद, जवाब में यह आयत नाज़िल हुई:

33:35 - 'सच में, मुस्लिम पुरुष और मुस्लिम महिलाएं, अक़ीदा रखनेवाले पुरुष और अक़ीदा रखनेवाली महिलाएं, फ़रमाबरदार पुरुष और फ़रमाबरदार महिलाएं, सच्चे पुरुष और सच्ची महिलाएं, सबर करने वाले पुरुष और सबर करने वाली महिलाएं, शाइस्ता पुरुष और शाइस्ता महिलाएं, ख़ैरात देनेवाले पुरुष और ख़ैरात देनेवाली महिलाएं, रोज़ा रखने करने वाले पुरुष और रोज़ा रखने वाली महिलाएं, वे पुरुष जो अपने निजी अंगों की हिफ़ाज़त करते हैं और ऐसा करने वाली महिलाएं, और वे पुरुष जो अक्सर अल्लाह को याद करते हैं और जो महिलाएं ऐसा करती हैं - उनके लिए अल्लाह ने माफ़ी दी है और बड़ा इनाम रखा है।

हजरत खदीजा

वो सभी जो चाहते हैं कि महिलाएँ घर पर रहें, बच्चे पैदा करे और सम्भाले, तालीम और नौकरी से दूर रहें, उनको अब जवाब देना पड़ेगा। हम हज़रत खदीजा को कैसे देखते है? वो, पैगंबर मोहम्मद की पत्नी, एक कामयाब तिज़ारत करने वाली महिला थी। वो पहली इंसान थीं जो मुसलमान बनी। वो पहली इंसान थीं जिसने पैग़म्बर की नबुवत को पहचाना और क़ुबूल किया। जब वो ४० साल की थीं तब २५ साल के पैग़म्बर के सामने शादी का प्रस्ताव रखा और शादी

की। वो एक सार्वजनिक शकसियत थी और अपनी दौलत में से उन्होंने इस्लाम क़ुबूल करने वालों को मदद की और उन पर ख़र्च किया।

सुकायना

हम रबाब और हुसैन की बेटी, फातिमा और अली की पोती और पैगंबर मोहम्मद की बड़ी पोती, सुकायना के बारे में इतना कम क्यों जानते हैं? वह बहुत ज़हीन थी और अपनी अक़्ल और बुद्धिमानी के लिए मशहूर थीं। उन्होंने अपने शौहर से लिखवाके लिया था कि वो उन के रहते दूसरी शादी नहीं करेंगे। और जब उन के शौहर ने ऐसा किया तब सुकायना ने उन्हें अदालत में खींचा। उन्होंने ने अपने निकाहनामे में यह भी लिखवाया था कि उन्हें अपने शौहर की नफ़रमानी का हक़ है।

फातिमा मर्निसी का क्या कहना है?

जब पैग़म्बर मोहम्मद मुसलमानो के सियासी लिडर थे तब हर महिला को पूरी नागरिकता मिली थी, हर महिला को सहाबी, पैग़म्बर के साथी होने का औदा मिला था। मुसलमान फख्र कर सकते हैं कि उनकी भाषा में 'सहाबियत' जैसे लफ़्ज़ है जो सहाबी औरत के लिए इस्तेमाल होते है। यानी वो सब औरतें मुस्लिम उम्मा के ग्रूप में शामिल हो सकती थी। वो अपने

पैगंबर–नेता से खुलकर बात करने के लिए आज़ाद थी। पुरुषों के साथ लड़ने, बहस करने के लिए आज़ाद थी। अपनी ख़ुशी के लिए लड़ने के लिए आज़ाद थी और समाज के सैनिक और सियाज़ी मामलों को भी बख़ूबी निभा लेती थी।

यह नहीं हो सकता है कि हम सार्वजनिक/पब्लिक जीवन में जम्हूरियत, बराबरी, और इंसाफ़ की मांग करें, लेकिन परिवार के निजी ज़िंदगी में नहीं। ज्यादा कुछ नहीं बदला है। इस्लाम के शुरुआती सालों में, पुरुषों ने इस्लाम को अपनाया और अपने पब्लिक/सार्वजनिक जीवन में इन्क़लाबी बदलाव ले आए। सियासी और माआशी ग़ैरबरबरी को ख़त्म कर दिया। लेकिन वो ही इंक़लाब वो घरों के अंदर लाने के लिए तय्यार नहीं थे। औरत और मर्द के रिश्ते में वो इंक़लाबी बदलाव वो नहीं चाहते थे। वो उन रिश्तों में इंसाफ़, बराबरी, लोकतंत्र नहीं चाहते थे। उन्होंने पूर्व–इस्लामिक रिवायतो को नहीं बदला। आज भी वो ही हो रहा है कि हम इस्लाम की इंसाफ़ और बराबरी की बात पब्लिक जीवन में करते है लेकिन उसे अपने निजी जीवन में और मर्द–औरत के रिश्तों में नहीं लाना चाहते है।

तालीम और नौकरी – इस की वजह से कई औरतें आज़ाद हुई है, ख़ासकर मुस्लिम औरतें। फातिमा मेर्निसी ने 'वूमेन एंड इस्लाम' में कहा है - 20वीं सदी में हमारे समाजों में औरतों की तालीम और नौकरी की वजह से समाज में बड़ा उथल पुथल हुआ है। पहले स्कूल और काम की जगह पर पुरुष का क़ब्ज़ा था। वो उनकी निजी जगह थी जहाँ से पुरुषों को बहुत ताक़त मिलती थी। ठीक उन्ही जगाओं पर, तालीम और नौकरी, पर औरतों ने भी अपना हक ज़ाहिर किया है। हर शय पर सवाल उठाना और खुले आसमान के नीचे अपनी जगह बनाना जहाँ पहले वो नहीं जा सकती थी। ये काम औरतों ने किया है.

Reference Fatima Mernissi, 'Women and Islam'

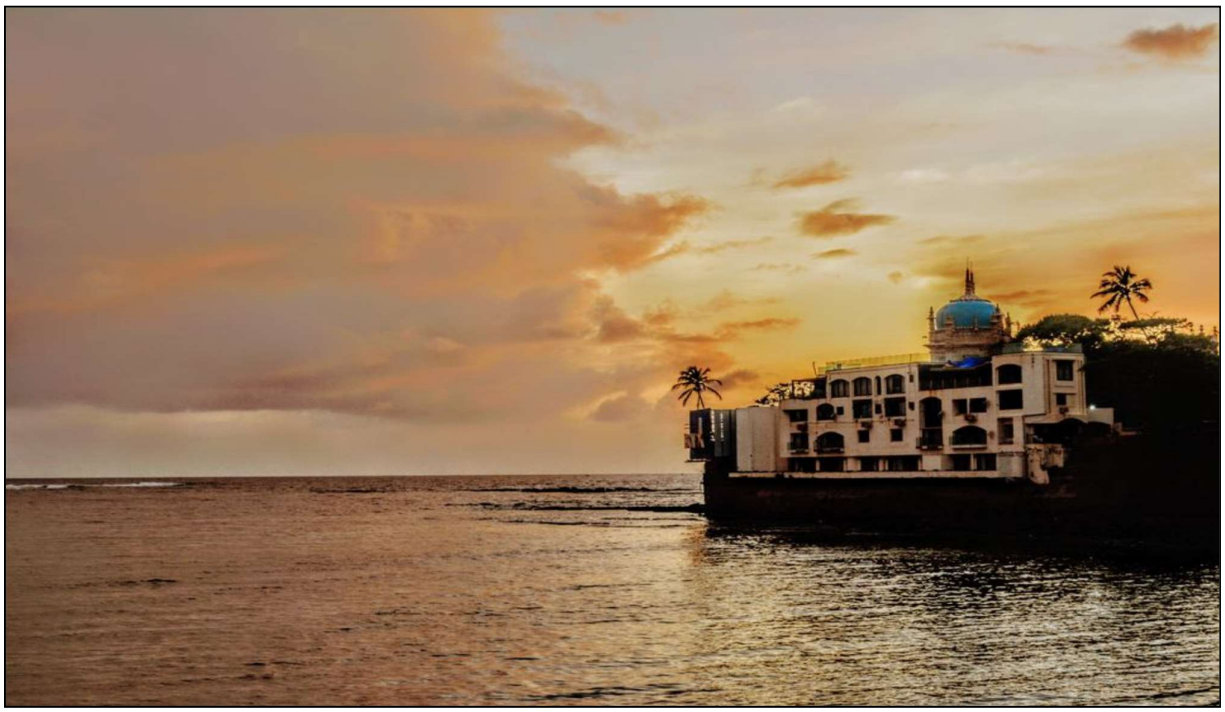

भारतीय मुस्लिम महिला संत–एक गुमशूदा शय

जिस मुल्क में औरतों का दर्जा इतना कम हो, वहाँ हम महिला संतो को कैसे देखते है?

हां और मुस्लिम महिला संतों के बारे में सोचना और भी मुश्किल है। क्यूँ की इस क़ौम ने औरत को उसके हक़ नहीं दिए जो अल्लाह ने उसे दिए है। इस क़ौम में महिला संत भी हो सकती है इस का तसव्वुर करना भी मुश्किल है। और इसी मुल्क और क़ौम में महिला संत है जिस के बारे में हम आगे पढेंगे।

डॉ. अमीना वदूद एक सोच देती है जिसके तहत हम इस मुद्दे को और समझ सकते है। पुरानी सोच के हिसाब से मर्द अल्लाह से सीधे राबते में है और अल्लाह से सारा इल्म वो ख़ुद लेते है और इस लिए वो औरतों से बढकर है। अमीना वदूद ने एक नया ढाँचा बनाया जहाँ वो औरत और मर्द को बराबर के दर्जे पे रखते हुए, दोनो को अल्लाह के क़रीब रखती है। दोनो में ही क़ाबिलियत है अल्लाह से इल्म लेने की। अल्लाह और उसकी ताक़त को समझने की दोनो में सलाहियत है। औरत मर्द पर मनहस्सर नहीं है अल्लाह को समझने के लिए।

क्या अल्लाह तक पहुँचने के कई अलग-अलग रास्ते नहीं हैं?

हर मज़हब का एक भाग ऐसा होता है जो यह बताता है की क़ानून क़ायदे क्या है, रस्में रिवायतें क्या है, दुआ कैसे पढ़ें, क्या पढ़ें, अल्लाह को कैसे याद करे वग़ैरह। बहुत से लोग इन रस्मों में सुकून पाते है. लेकिन कुछ लोग ऐसे भी है जो इन रस्मों के आगे जाना चाहते है. कई ऐसे भी हैं जो सिर्फ़ एक मज़हब तक अपने आप को महदूद नहीं रखते है। उनके लिए सभी रास्ते एक ही अल्लाह/भगवान/हक़ीक़त की तरफ़ जाते है।

सूफी इस्लाम के हिसाब से अल्लाह पर ध्यान लगाना इबादत के बराबर होता है। वो लम्बे समय तक ध्यान लगाते है, इबादत करते है और अल्लाह तक पहुँचने की कोशिश करते है। उनके लिए जिस्म के हावभाव या मंत्र पढ़ना यह काफ़ी नहीं होता। वो अल्लाह को महसूस करना चाहते है. लेकिन अल्लाह को इतना क़रीब से समझने का दावा करने वाले सूफ़ी भी पिदर्शाही सोच के हाथों से बच नहीं पाए।

औरत-मर्द की बराबरी तय करने के लिए हम क़ुरान का इस्तेमाल कैसे करते है?

डॉ. अमीना वदूद, जिसे लेडी इमाम भी कहा जाता है, कैरोलीन सुनेर [www.ruskeattytot.fi] से बातचीत करते वक़्त बताया, 'एक मुसलमान के रूप में मैं इस्लामी पाक किताबों का इस्तेमाल इंसानों के बारे में बात करने के लिए करती हूं जहाँ इंसानो को अल्लाह ने एक ख़लीफ़ा के रूप में बनाया है। इंसान इस दुनिया में अल्लाह के तरफ से भेजे हुए ख़लीफ़ा है। खलीफा एक एजेंट है, वह जो अल्लाह की मर्ज़ी को पूरा करता है और अल्लाह की मर्ज़ी है संतूलन बनाना, तालमेल बनाए रखना।

इसलिए, महिला और पुरुष दोनों को, दुनिया में एक इखलाकी एजेंट की तरह अल्लाह ने भेजा है। 'महिलाओं और पुरुषों का कर्तव्य है कि वे अच्छाई करें और बुराई के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाए और संतूलन बनाए रखे।

यह कहने के बाद, क्या किसी के मन में कोई शक होना चाहिए कि महिलाएं रूहानी ताक़त नहीं रखतीं? लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, इतिहास पुरुष लिखते है और उन्होंने औरतों के सभी तजुरबों को, चाहे रूहानी हो या कुछ और, कभी अहमियत नहीं दी।

इस्लाम में औरत-मर्द की बराबरी के बारे में क्या लिखा है?

इस्लाम महिलाओं और पुरुषों की समानता को मानता है, क्योंकि दोनों एक ही नफ्स से बने है। 4:1 में लिखा है -"ऐ इंसान, अल्लाह को याद कर जिसने तुझे एक नफ्स से बनाया। और उस में उस का जोड़ीदार बनाया और उन में से बीज बनाए और उन में से कई औरत और मर्द बनाए। अल्लाह को याद करो जिन से तुम अपना हक़ माँगते हो और उस कोक की इज़्ज़त करो जो तुम को पैदा करती है'। ये आयत में, शुरुआत से ही, औरत-मर्द की बराबरी बहुत खुले लफ़्ज़ों में बयान हो जाती है। इस के इलावा आयत 2:187 में दोनो को एक दूसरे का लिबास कहा गया है।

भारत में महिला संतो की मज़ारों का क्या हाल है?

चंदन गौड़ा अपने लेख में बताते हैं कि बेंगलुरु शहर में लगभग दो दर्जन सूफी संत हैं, लेकिन इस शहर को अपने इस ख़ज़ाने का ज़रा सा भी अंदाज़ा नहीं है। अफसोस की बात यह है कि महिला संतों को बहुत जल्दी क़ुबूल नहीं किया जाता है क्यूँकि कई लोग यह तसव्वुर नहीं कर सकते कि एक औरत भी संत हो सकती है। सूफ़ी संत कहने पर, पुरुष संत की ही तस्वीर सामने आती है। चंदन कहते है, अलग अलग सूफ़ी बारगाहो की लीडर्शिप पुरुषों

के हाथ में है जहाँ लोग वो रूहानियत की बातें सिखने समझने आते है। और अगर कोई महिला सूफ़ी ऑर्डर की लीडर बन गयी तो उन की ताक़त को कम कर दिया जाता है। जैसे वो पढ़ा सकती है लेकिन मुरीद नहीं बना सकती या सिर्फ़ महिला मुरीद ही बना सकती है। ओटोमन तुर्की में बेक्टाशी आदेश अकेला ऐसा आदेश है जहाँ मर्द और औरत दोनो बराबर के तालिबा/स्टूडेंट्स है और रूहानी बराबरी रखते है और लीडर भी बन सकते है।
भारत में महिला संतों की मज़ारे बहुत सारी है। लेकिन उनकी कामयाबियों का कोई रिकॉर्ड नहीं है, हालांकि वे अपने गाँव/शहर में मशहूर है। गौड़ा लिखते हैं, कर्नाटक के सूफगालु (कर्नाटक के सूफ़ियों, 1998), रहमत तरिकेरे ने राज्य में कई महिला सूफ़ी संतों के नाम दिए है: गौरीबदनुर की नियामतबी; कदुर की ज़रीनाबी; गुलबर्गा की बीबी फातिमा; रामदुर्गा की सय्यदानी; हरपनहल्ली बागुर की मस्तानीमा'। और यह देश का सिर्फ एक राज्य है। जाने कितनी मुस्लिम महिला संत दूसरे राज्यों के अनगिनत गाँव और शहरों में होंगी जिसका कोई रिकॉर्ड नहीं है.

भारत की कुछ मुस्लिम महिला संतो के बारे में जानकारी लेते है

कुडची की माँ साहेब

कर्नाटक के कुडची गाँव की हज़रत मखदूमाँ माँ साहेब एक काबिल-इ-एहतेराम सूफी संत हैं। वह हमारी अपनी राबिया बसरी के रूप में भी जानी जाती है। वह हज़रत शेख सिराजुद्दीन जुनैदी बगदादी की मुरीद थीं। दक्कन के सभी संतों और रूहानी हस्तियों ने माँ साहेब से आशीर्वाद लिया है। वह शहज़ादी बल्ख मखदूमाँ हज़रत सय्यदा मा साहेबा अशरफ़े दो जहाँ के नाम से

जानी जाती हैं. वह दक्कन की एक श्रद्धालु संत हैं और हर मज़हब के मानने वाले उनकी मज़ार पे आते है। वह अफगानिस्तान के बल्ख क्षेत्र से आई थी लेकिन बग़दाद की मिट्टी को साथ लायी थी। उन्हें भारत की उस जगह को चुनने के लिए कहा गया, जिस की मिट्टी का वज़न बग़दाद की मिट्टी के वज़न के बराबर हो। कुड़ची की मिट्टी बग़दाद की मिट्टी से मेल खाती थी। और इसलिए वह यहां बस गईं।

उनके जीवन के बारे में बहुत कम लिखा गया है, बस बहुत सारी क़व्वालियाँ है जो उनके बारे में है, जहाँ उनकी तारीफ़ की गयी है और कैसे वो ग़रीबों की सुनती है और कैसे वो सब को दुआएँ देती है। एक माँ की तरह सब पर नज़रें करम करती हैं। वो अपने ग़ुस्से के लिए मशहूर थीं और इसी लिए उन्हें जलाली कहा गया है। हज़रत शिराज़उद्दिन ने उनका दिल ७ बार धोया ताके वो ठंडा हो सके।

मुंबई शहर की माँ हाज़नी

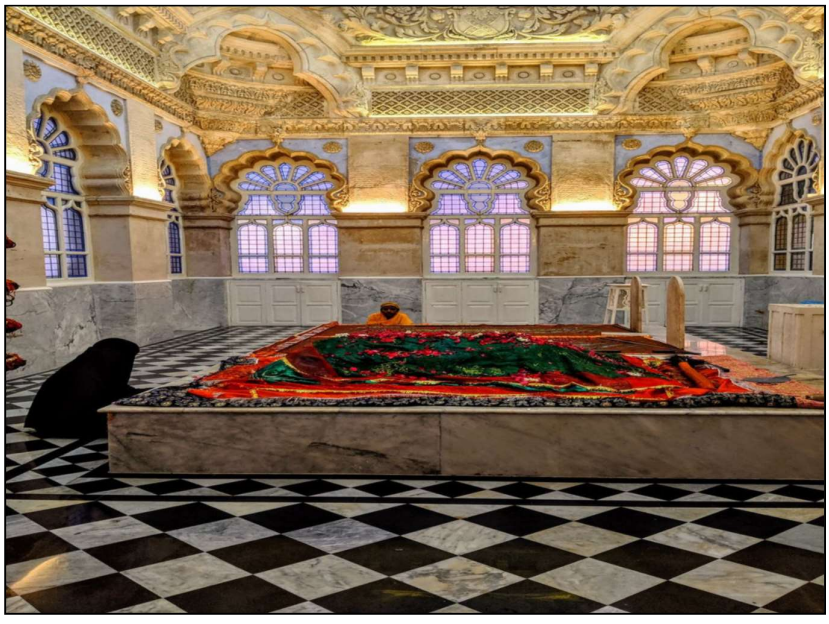

एक और महिला संत, जो आमतौर पर अपने भाई के नाम की वजह से ज़्यादा जानी जाती है, वह मां हाज़ीनी/माँ हाजी अली है। नाम को देखते हुए यह माना जाता है कि वह पीर हाजी अली शाह बुखारी की माँ थी, लेकिन कुछ का कहना है कि वह उनकी बहन थीं। दोनों अपने मुल्क उज़बेकिस्तान से मक्का की यात्रा कर रहे थे। उनका जहाज डूब गया और वो ठीक उसी जगह पर आ पहुँचे जहाँ आज उनकी मज़ार है। इतिहास कुछ भी कहे, लेकिन माँ हजीयनी की रूहानी अहमियत को कम नहीं समझा जा सकता है।

दरगाह में तीन कब्रें है; एक माँ की और दूसरी हाजी इस्माइल हशाम यूसुफ और उनके बेटे सर मोहम्मद यूसुफ की। यह परिवार, जो बड़े पैमाने पर शिपिंग, तिज़ारत और परोपकार में था, उसने 1908 में मां की याद में इस दरगाह को बनाया। दरगाह को इस्माइल यूसुफ ट्रस्ट के ज़रिये सम्भाला जा रहा है।

दरगाह पर लगी तखती पर लिखा है, 'यह मकबरा संत माँ हाजीयनी की कब्र पर साल 1908 में, बराय ईमान और अकीदा, बनाया गया है, जो उनके पाक नाम और पाक याद में बनाया गया है। बनाने वाले है हाजी इस्माइल हाशम यूसुफ, जहाज के मालिक और भारतीय शिपिंग के मालिक जिनका 20 सितंबर,1912 को निधन हो गया था और उन को उनकी आख़री खवाईश के मुताबिक़ कब्र के पश्चिम की ओर दफनाया गया था'।

इस दरगाह के वास्तुकारों [architects] और कारीगरों के बारे में बहुत कुछ मालूम नहीं है, हालांकि दरगाह को सौ साल पहले ही बनाया गया था। और उन से भी कम हम माँ हजीयनी के बारे में जानते है। उनका जीवन कैसे था, उन्होंने क्या क्या किया, उन की रूहानियत कैसे थी – कुछ भी नहीं जानते। चाहे हमें कुछ पता हो या ना हो, यह बात तो तय है की इस दरगाह में बेहद सुकून और शांति है और यह अनगिनत भारतियों और मुंबईवासियों की यादों का एक अहम हिस्सा है।

Reference: 1 & 2. Ethics of Tawhid and Qiwamah, Article by Dr. Amina Wadud in ' Men in Charge? Rethinking Authority In Muslim Legal Tradition, pg.270/271 3. Case of Women Sufis, Bangalore Mirror Bureau, 2016, Chandan Gowda

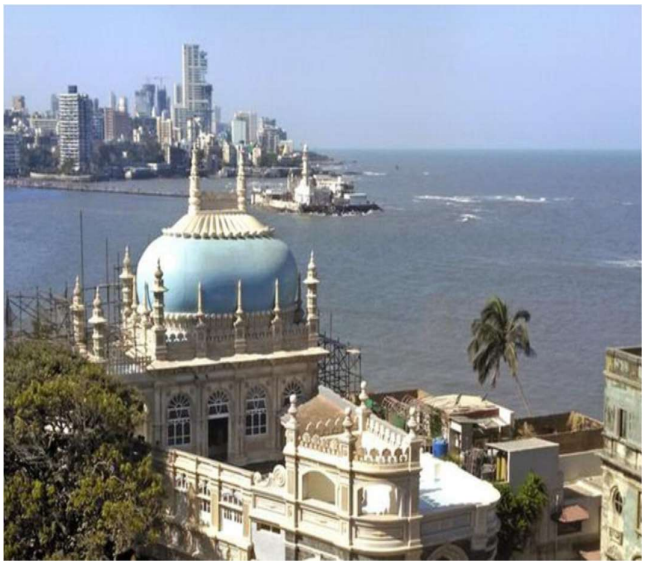

महिला नेतृत्व : मुस्लिम महिला मध्यस्थ

एक तरफ़ मुस्लिम समाज के लिए विधिबद्ध/codified पारिवारिक क़ानून नहीं है और दूसरी तरफ़ जो क़ानून है उसे बुरी तरह से लागू किया जाता है, इस के बावजूद मुस्लिम औरतों ने क़ानून के क्षेत्र में बहुत काम किया है

भारतीय मुस्लिम महिला आन्दोलन [BMMA] की महिलाओं ने ३ अहम काम किए है:

१. उन्होंने अपना खूद का क़ानून बनाया है। इस क़ानून को लिखने में उन्हें ८ साल लग गए। क्यूँकि सरकार की तरफ़ से कोई क़ानून नहीं है इस लिए BMMA की लीडर्स BMMA का क़ानून ही इस्तेमाल करती हैं।

२. उन्होंने औरतों की शरिया अदालत बनायी है जहाँ हर रोज़ पीड़ित औरतें अपने क़ानूनी मसले ले कर आती है। BMMA लीडर्स पीड़ित औरतों की मदद करते है।

३. उन्होंने दरूल-उलूम-निस्वान बनाया जिस के तहत २० मुस्लिम औरतें आज काज़ी बनी है।

उन्होंने ऐसे ढाँचे बनाये है जिस से पीड़ित औरत को इंसाफ़ मिल सके

क्या यह अदालत/क़ाज़ी मध्यस्थ है?

जी हाँ।इन औरतों का औपचारिक ट्रेनिंग हुआ और इस ट्रेनिंग के बाद ही वो क़ाज़ी बनी है। क़ाज़ी के इलावा अदालत में वो औरतें भी है जो अपना वक़्त पीड़ित औरतों को देती है, और उनकी मदद करती है। यह सभी बहने BMMA के क़ानून को मानती है, दूसरी संस्थाओं, काज़ियों और वकीलों की मदद लेती है। पीड़ित की मदद करने वो उनके घर जाती है, उन के शौहर के भी घर पहुँच जाती है, पोलीस के साथ भी काम करती है और समाज के हर घटक की मदद लेती है, पीड़ित की मदद करने के लिए। ऐसा करने से केस जल्दी हल हो जाता है और पीड़ित महिला को जल्दी राहत मिलती है। नारिवादी काउन्सलिंग में उनका ट्रेनिंग हुआ है जहाँ उसे यह बताया जाता है की उसे पीड़ित महिला की तकलीफ़ को समझना, उस पर विश्वास रखना है और जज़्बाती तौर पर उसे सहारा देना है। प्रशिक्षण के वक़्त

उसे क़ुरान की जानकारी दी जाती है और देश के बाक़ी कानूनो के बारे में भी सिखाया जाता है।

इस काजी प्रशिक्षण में, काजी को शादी से पहले लड़की और लड़के के साथ मिलकर बात करना ज़रूरी है। सभी मुद्दे जैसे मेहर, दोनों की शर्तें, निकाह के बाद रिहाईश की जगह, लड़के की आमदनी, काम वग़ैरा। क़ाज़ी की यह भी ज़िम्मेदारी है कि दोनो की सहमती, ख़ासकर लड़की की सहमती जान ले। क़ाज़ी को यह भी चेक करना है की दोनो ने १८ और २१ साल पूरे किए है या नहीं। काज़ी को यह भी परखना होगा की लड़के की कही यह दूसरी शादी तो नहीं। अब तक हमें ऐसा करने का एक अवसर मिला है। लेकिन जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं और जैसे-जैसे ज़्यादा से ज़्यादा महिलाएं एक महिला काजी के ज़रिए से शादी करने के लिए आगे आती हैं, महिला क़ाज़ी से यह कामों की उम्मीद की जाएगी।

मुस्लिम महिला जो कानूनी सहायता करती है, क्या हम उसे मध्यस्थ कह सकते हैं?

BMMA से जुड़े कानूनी सहायक लोगों के बीच रहकर काम करते है। वो लोगों के बीच अपना सेंटर चलाते है. महिलाएं, पीड़ित, साथियों का आना जाना

लगा रहता है। यहां ट्रेनिंग भी होती है, मीटिंग भी होती है और और अदालत का काम भी यहाँ होता है। BMMA की औरतें एक काम से दूसरे काम की ओर आराम से चले जाते है। कभी मध्यस्थ, कभी काउन्सिलर, कभी एक बहन और कभी एक दोस्त बन जाती है।

और यह सपोर्ट सिर्फ़ पीड़ित को ही नहीं बल्कि उसके माँ, पिता, भाई और उसके परिवार के लोगों को भी दिया जाता है जो बहुत परेशान होते है पीड़ित की तरह। कहने को यह काम कोर्ट में जाने के पहले वाला काम समझा जाता है [pre-litigation] लेकिन सच में यह क़ानूनी काम है, कोर्ट का काम है, एक मुक़द्दमा चलाने का काम है, लेकिन कोर्ट के बाहर किया जाता है। इस तरह यह कार्यकर्ता कोर्ट का काम करके कोर्ट के बोझ को हल्का कर रहे है।

ये महिला मध्यस्थ किन उसूलों में मानते है?

बराबरी, इंसाफ़, आज़ादी, जम्हुरियत, रहम, अच्छाई, बहनचारा – महिला क़ाज़ी और अदालत की कार्यकर्ता इन उसूलों में मानते है। यह उसूल कुरान और संविधान में दिए गए है। यह बहने नारीवादी उसूलों पर भी काम

करते हैं, जिस के चलते उसे पीड़ित महिला को सुनना है, उस पर भरोसा करना है, उसे सपोर्ट करना है।

तो मध्यस्थता क्या है?

मध्यस्थता दो लोगों के बीच मुद्दों को हल करने के लिए एक तीसरे इंसान से बातचीत को कहते है। मध्यस्थता सदियों पुरानी है। पहले के समय में, अगर किसी इंसान को कोई परेशानी होती थी तो वो पहले परिवार के पास अपना मसला रखते थे और परिवार पहला मध्यस्थ हो जाता था। परिवार अब भी पहला मध्यस्थ बना हुआ है। न्याय पंचायत, ग्राम पंचायत, जाती पंचायत, जमात जैसे ग्रूप्स भी मौजूद थे और अब भी मौजूद हैं। यह ग्रूप्स कितना औरतों और जातियों के पक्ष में बोलते थे यह एक अलग विषय है। लेकिन मध्यस्थता हमेशा से रही है।

आज हमारे पास और बहुत से ऐसे ग्रूप्स है। हमारे पास अदालत है, मध्यस्थता समूह है, अदालतों के अंदर काउन्सलिंग सेंटर है, NGO, जात पंचायत है और जमातें है। अदालतों के अलावा, बाक़ी ग्रूप्स को औपचारिक रूप से कानून और प्रक्रियाओं के बारे में ट्रेनिंग नहीं मिलती है। इल्म, अक़्ल, थोड़ी बुनियादी समझ, थोड़ी ट्रेनिंग, थोड़ा सामान्य इल्म के ज़रिए औरतों ने बहुत ही अच्छी तरह मध्यस्थि की ज़िम्मेदारी निभाई है।

ऐसे फ़ोरम क्यों सामने आए, हमारी इन्साफ के निजाम / न्याय व्यवस्था में क्या कमी हैं?

हमारे देश में सरकारी निज़ाम के तीन पहलू हैं; विधायिका [MP, MLA, corporator] कार्यपालिका [अफ़सर] और न्यायपालिका [कोर्ट]। एक इंसान को इंसाफ़ दिलाने के लिए यह तीनो ज़रूरी है। एक अच्छा कानून होना ज़रूरी है। उस क़ानून को ढंग से लागू करना और भी ज़रूरी है। और अगर कोइ मसला हो जाए तो पोलीस और कोर्ट्स भी ठीक से चलने चाहिए ताके जल्दी इंसाफ़ मिल सके।

मोटे तौर पर हमारे कानून काफी अच्छे हैं। वे एक लंबी बहस के बाद संसद में बने हैं, संसदीय समितियां बनी हैं जो इस पर बैठती हैं और बहुत सोच विचार कर के हमें एक क़ानून मिलता है। और इन क़ानूनों में वक़्त के साथ बदलाव भी लाया जाता है उन्हें बहतर बनाने के लिए।

लेकिन जहाँ तक इन कानूनों को लागू करने की बात है हमारा देश अभी बहुत पीछे है। हमारा निजाम बहुत ख़राब है। जब कोई इंसान परेशान होता है और क़ानून का सहारा लेना चाहता है तो सब से पहले वो पुलीस स्टेशन जाता है। और यह कोई छुपाने वाली बात नहीं है कि हमारे पुलिस स्टेशन कैसे काम करते हैं। वहाँ ना औरतों की सुनवाई होती ना किसी और की। शिकायतें लिखी नहीं जातीं, FIR लिखे नहीं जाते। जहाँ से इंसाफ़ मिलना चाहिए और सुनवाई होनी चाहिए जब वहां नहीं होती है तब समाज इस तरह के ग्रूप्स तयार करता है क्यूँ कि इंसाफ़ मिलना यह हर इंसान का हक़ है।

क्या मध्यस्थता करने वाले ग्रूप्स में कोई तालमेल है?

ये एक चुनौती है और आने वाले दिनो में हमें इस पर काम करना चाहिए। हर ग्रूप एक दूसरे से इतने अलग है कि साथ में काम करना थोड़ा मुश्किल लगता है लेकिन नामुमकिन नहीं। पीड़िता अदालत में, एक मध्यस्थ के पास, गैर

सरकारी संगठन या काज़ी के पास जा सकती है। वह जहाँ भी जाती है, हमें उसकी मदद करने के लिए एक-दूसरे से हाथ काम करना चाहिए। भारतीय संविधान की कलम 39A के मुताबिक़, हर इंसान को इन्साफ मिलना चाहिए। गरीब से गरीब इंसान को इंसाफ़ मिलना चाहिए। लेकिन ऐसा होने के लिए, सभी लोगों को साथ में काम करना पड़ेगा। हम अपने अपने ग्रूप में रहकर ज़्यादा मदद नहीं कर पाएँगे। वकीलों को NGO से हाथ मिलाने की ज़रूरत नहीं महसूस होती, NGO को काज़ीयों से परहेज़ है – इतनी दूरी रहेगी तो हम अकेले पीड़ित की मदद कैसे करेंगे? क्या हमारे आपस के बीच तालमेल और सपोर्ट हो सकता है? क्या क़ाज़ी, वकील और संघटन एक साथ काम कर सकते हैं?

इसके लिए ग़ुरूर को हटाना होगा, एक दूसरे को क़ुबूल करना होगा, एक दूसरे की ताक़त को क़ुबूल करना होगा, एक दूसरे की इज़्ज़त करनी होगी और एक दूसरे को समझ के लेना होगा। हमें एक ऐसा सिस्टम बनाना होगा जहाँ यह सारे लोग मिलकर काम करे। एक दूसरे की ताक़त का फ़ायदा उठाते हुए पीडित को मदद करें। क्या हम सभी सबसे कमजोर लोगों को इंसाफ़ दिलाने के लिए एक बहतरीन सिस्टम बना सकते है?

आशना ट्रस्ट

न्याय, शांति और विकास के लिए महिलाओं की पहल का समर्थन

आशाना ट्रस्ट बॉम्बे पब्लिक ट्रस्ट अधिनियम, 1950 के तहत पंजीकरण संख्या ई-26799 के तहत पंजीकृत है। इसे 10 मार्च 2010 को चैरिटी कमिश्नर कार्यालय में पंजीकृत किया गया था।

पृष्ठभूमि

पिछले कई दशकों में महिलाएं आगे आई हैं और अपने अधिकारों पर दावा किया है, हालाँकि, धर्म, जाति, वर्ग और जातीयता की वजह से महिलाओं की स्थिति को नुक्सान पहुंचा है. इसलिए हम देखते हैं कि महिलाओं का एक बड़ा वर्ग, खासकर अल्पसंख्यक और हाशिये पर रहने वाले समुदाय, अभी भी सम्मानजनक जीवन जीने के लिए संघर्ष कर रहा है.

सपना

आशना ट्रस्ट एक ऐसे समाज की कल्पना करता है, जहां समाज में किसी भी स्तर की महिलाएं डर और अभाव से आज़ाद हों. यह विशेष रूप से मुस्लिम और हाशिए पर रहने वाली महिलाओं के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने पर ध्यान देना चाहता है, जहां वह अपने अधिकारों का इस्तेमाल कर सके. देश के संविधान में लिखे अधिकारों को पा सके और समाज के अन्दर बराबर अधिकार और न्याय पा सके.

लक्ष्य

आशना ट्रस्ट का मिशन हाशिये पर मौजूद महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, कानूनी और राजनीतिक सशक्तिकरण को हासिल करना है। महिलाओं से संबंधित मुद्दों, खासकर पारिवारिक कानून और सरकारी कार्यक्रमों पर जन वकालत करना. इन उद्देश्यों को हासिल करने की लिए रणनीति में प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण, नेतृत्व विकास, अभियान और वकालत का समावेश है.

उद्देश्य

- महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, कानूनी और राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए काम करना।

• महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर नीतिगत बदलाव की वकालत करना

गतिविधियाँ

• मुस्लिम महिलाओं को पितृसत्ता से लड़ने के लिए तैयार करना
• महिलाओं, बच्चों और युवाओं के साथ मानसिक स्वास्थ्य पर जागरूकता कार्यक्रम
• उनके संवैधानिक अधिकारों के बारे में जागरूकता कार्यक्रम
• उनके नेतृत्व विकास के लिए कार्यक्रम आयोजित करना
• सभी महिलाओं को उनके कानूनी अधिकारों की जानकारी के साथ-साथ कानूनी सहायता प्रदान करना
• महिला नेताओं को सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों तक पहुंचने में सक्षम बनाना
• राशन की दुकानों, स्वास्थ्य क्लीनिकों, स्कूलों और अन्य नागरिक सुविधाओं जैसे राज्य तंत्र की निगरानी करना

अब तक का प्रभाव

आशना ट्रस्ट प्रशासनिक रूप से भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन [BMMA] का समर्थन कर रहा है और [BMMA] की उपलब्धियां हैं:

• महिलाओं, युवाओं और बच्चों के साथ मानसिक स्वास्थ्य पर जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए
• माता-पिता और युवाओं के साथ विवाह पूर्व सुविधा पर अनेक कार्यक्रम किये
• बाल यौन शोषण पर सैकड़ों बच्चों और अभिभावकों तक पहुंच बनाई
• बच्चों और युवाओं में भारतीय संविधान के प्रति जागरूकता पैदा की
• यौन और प्रजनन स्वास्थ्य पर हमारे कार्यक्रमों से कई युवाओं को लाभ हुआ
• 12 साल के अभियान के माध्यम से तीन तलाक कानून को सफलतापूर्वक पारित कराया
• हाजी अली दरगाह में महिलाओं के प्रवेश पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला मिला
• 20 महिलाओं को काज़ी बनने के लिए प्रशिक्षित किया
• हजारों मुस्लिम महिलाओं को उनके कानूनी अधिकारों के बारे में प्रशिक्षित किया
• सभी सामाजिक-आर्थिक-कानूनी मुद्दों पर आगे बढ़कर नेतृत्व करने के लिए मुस्लिम महिलाओं को प्रशिक्षित किया
• मुस्लिम युवाओं को आत्मविश्वासी बनाने के लिए सहर, उड़ान समूह बनाए

NOTES

NOTES

supported by

ASHANA TRUST